ओपन एंड डिस्टैंस लर्निंग विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

कक्षा : एम.ए. भाग-1 *सैमेस्टर-2*

पत्र : तीसरा (हिन्दी साहित्य का इतिहास) *एकांश संख्या : 2*

(आधुनिक काल)

माध्यम : हिन्दी

पाठ नं.

2.1 हिन्दी गद्य विधाओं का उद्‌भव और विकास

2.2 हिन्दी कहानी

2.3 हिन्दी निबन्ध का उद्‌भव और विकास

2.4 संस्मरण और रेखाचित्र : सामान्य परिचय

Department website : www.pbidde.org

पाठ संख्या : 2.1

हिन्दी गद्य विधाओं का उद्‌भव और विकास

इकाई की रूपरेखा :

2.1.0 उद्देश्य
2.1.1 प्रस्तावना
2.1.2 हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास

2.1.0 उद्‌देश्य :

आधुनिक काल (संवत् 1900 से आज तक) में हिन्दी गद्य का विकास हुआ। इसीलिए इस काल का साहित्य पद्य और गद्य दो भागों में विभाजित किया जाता है। गद्य के क्षेत्र में इस काल में बहुत बड़ी मात्रा में साहित्य रचना हुई। साहित्य में गद्य का आविर्भाव और विकास पद्य के बाद ही देखा जाता है। कविता को स्मरण करने में सरलता के कारण उसका विकास शीघ्र होता है। हिन्दी गद्य का प्रारंभ आधुनिक काल से ही होता है। इस काल से पूर्व हमें गद्य साहित्य बहुत कम मात्रा में मिलता है, इसका कारण चाहे कोई भी रहा हो। प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप अग्रलिखित दृष्टिबिन्दुओं से परिचित हो पाएंगे –

– हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास कब और किन परिस्थितियों में हुआ के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
– नई कहानी, साठोत्तरी कहानी के संबंध में भी जान प्राप्त कर सकेंगे।
– हिन्दी आलोचना के उद्‌भव और विकास विषय से तारतम्य बैठा सकेंगे।

2.1.1 प्रस्तावना :

हिन्दी पद्य के मुकाबले हिन्दी गद्य के देर से विकसित होने में जन्मकाल की परिस्थितियां भी उत्तरदायी हैं। हिन्दी के जन्म होते ही देश विदेशियों से आक्रान्त होते लगा था और वे अपनी भाषा आपने साथ लाए थे। उनके लिए ये स्वाभाविक ही था कि वे अपनी भाषा का प्रचार और प्रसार करें और यहां की देशी भाषा को प्रतिद्वन्द्वी समझ उसके विकास में बाधा उपस्थित करें। दूसरे देश की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति ऐसी थी कि साहित्यकार या तो धन और मान पाने के लिए अपने स्वामी के प्रशस्ति गान गाता था अथवा विदेशी आक्रमणकारियों से मुक्ति पाने के लिए भगवान् की शरण में जा उसकी प्रार्थना करता था। जीवन की गंभीर समस्याओं के विवेचन की ओर जिसके लिए गद्य आवश्यक है, उसका ध्यान ही न था। अतः गद्य दैनिक बोलचाल तक ही सीमित रहा, उसे साहित्य में स्थान न मिल पाया। तीसरे उस समय, जिसे हम आज हिन्दी भाषा–भाषी प्रदेश कहते हैं, वहां किसी सर्वमान्य भाषा का अधिपत्य न था, कोई ऐसी केन्द्रीय भाषा न थी, जिसे अब अपनी स्वीकार कर, उसकी उन्नति और विकास में योग देते। उस समय बोलचाल की ही नहीं साहित्यिक भाषाएं भी अनेक थीं– राजस्थानी, ब्रज, अवधी, बुन्देलखण्डी इत्यादि। भारतेन्दु काल में हिन्दी का प्रचार और प्रसार तो हुआ, साहित्य के विविध अंग भी परिवर्तित होकर सम्पन्न बने, परन्तु गद्य अभी भी अशुद्ध ही था। इस कभी की ओर सर्वप्रथम द्विवेदी जी का ध्यान गया और इस ओर कार्य प्रारंभ किए। 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से इस समस्या को सशक्त ढंग से सुलझाया। हिन्दी गद्य–रचना के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद और प्रेमचन्द के आगमन से साहित्य और भी सम्पन्न हुआ।

2.1.2 हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास :

हिन्दी साहित्य की अन्य गद्याश्रित विधाओं की तरह भारतेन्दु युग से ही हिन्दी उपन्यास का भी प्रारंभ होता है। हिन्दी में उपन्यास रचना की परम्परा बंगला साहित्य की प्रत्यक्ष और अंग्रेजी साहित्य की परोक्ष प्रेरणा से शुरू

हुई। हिन्दी का प्रथम उपन्यास श्रद्धाराम फिल्लौरी का 'भाग्यवती' 1877 ई. है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि इस उपन्यास की दृष्टि से हिन्दी का प्रथम आधुनिक उपन्यास इसे अवश्य कहा जा सकता है। किन्तु विद्वानों का एक बड़ा वर्ग इसकी कई कमियों को संकेत करता हुआ, यह श्रेय किशोरी लाल गोस्वामी का 'परीक्षा गुरु' को देना चाहता है।

भारतेन्दु जी के नाम से जोड़े जाने वाले 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रमा' वास्तव में उनकी प्रेरणा से श्रीमती मल्लिका देवी द्वारा किया गया मराठी में अनुवाद था। यह अवश्य है कि उस युग की चेतना का प्रतीक बना और इसने हिन्दी उपन्यास की गतिविधि निर्धारित की। उसकी रचना कुछ आपबीती और जगबीती को उपन्यास कहा जाता रहा है। बाबू ब्रजरत्न दास के अनुसार यह कहानी न होकर सरल शैली में लिखा गया संस्मरण है।

भारतेन्दु युग के उपन्यासकारों में किशोरी लाल गोस्वामी, बाल कृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह, राधा कृष्ण दास, लज्जा राम शर्मा, देवकी नन्दन खत्री और गोपाल दास गहमरी उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु युग में पांच प्रकार के उपन्यासों की रचना हुई – सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी–ऐय्यारी, जासूरी, रोमानी।

सामाजिक उपन्यास :

भारतेन्दु युग के सामाजिक उपन्यासों में 'भाग्यवती' और 'परीक्षा गुरु' के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट कृत 'रहस्य कथा', 'नूतन', 'ब्रह्मचारी', 'सौ अजान एक सुजान' राधा कृष्ण दास का 'निस्सहाय हिन्दू', लज्जा राम शर्मा के 'धूर्त रसिकलाल', 'स्वतंत्र' रमा और लक्ष्मी तथा किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'त्रिवैणी का सौभाग्य श्रेणी' विशेष उल्लेखनीय हैं। डॉ. रामचन्द्र तिवारी के अनुसार इन सभी उपन्यासों का लक्ष्य समाज की कुरीतियों को सामने लाकर उनका विरोध करना और आदर्श परिवार एवं समाज की रचना का संदेश देना है।

ऐतिहासिक उपन्यास :

ऐतिहासिक उपन्यासों में किशोरी लाल के 'लवंग लता' (1890) को ही उल्लेखनीय कहा जा सकता है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी के अनुसार इसे ऐतिहासिक उपन्यास की मर्यादा देना उचित नहीं। वस्तुतः इस युग में ऐतिहासिक उपन्यासों की आकांक्षा की पूर्ति बंकिम के ऐतिहासिक उपन्यासों के अनुवादों से हुई।

तिलस्मी-ऐय्यारी :

तिलस्मी–ऐय्यारी उपन्यासों का प्रवर्तन बाबू देवकी नन्दन खत्री ने 1882 में 'चन्द्रकांता' लिखकर किया। 'चन्द्रकांता सन्तति' (चौबीस भाग) 'नरेन्द्र मोहिनी', 'वीरेन्द्र वीर' और 'कुसुम–कुमारी' भी इसी युग में हुए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार वे पहले भौतिक उपन्यास लेखक थे, जिनके उपन्यास की सर्वसाधारण में धूम हुई। इनके अतिरिक्त हरिकृष्ण जौहर का 'कुसुम–लता' भी उल्लेखनीय है।

देवकी नन्दन खत्री के उपन्यासों में प्रेम वियोग और मिलन की अधिकाधिक कथाओं के साथ ऐय्यारी और तिलस्म की अनेक प्रासंगिक कथाएं बड़े कौशल से संग्रहित है। डॉ. गोपाल राम के अनुसार इनमें अद्‌भुत कौतुहलोत्पादक और रोमांचकारी घटनाओं की लंबी और जटिल श्रृंखला है जिसमें एक बार कैद होकर साधारण पाठक निकल नहीं सकता। ऐय्यारी की अद्‌भुत कारवाइयों, अजीब चालाकियों, वेश बदल कर शत्रु के दुर्ग में घुस जाना तथा चुटकी बजाकर असंभव कार्य कर आना, देखते–देखते दुश्मन के आदमियों को भुलावा देकर बेहोश कर देना और गठरी में बांध कर कैद कर आने तक तिलस्मी करिश्मों और तमाशों का ऐसा अपूर्व और अभिभूत कर देने वाला वर्णन इन कथाओं में मिलते हैं जिसे पढ़ कर मुंह में उंगली दबानी पड़ती है। इनका मुख्य उद्‌देश्य मनोरंजन है। उनमें हिन्दू आदर्शों के अनुकूल जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति भी हुई है। शिल्प और भाषा तत्कालीन पाठक की रुचि और बौद्धिक क्षमता के अनुकूल है। साहित्यिक दृष्टि से भले ही इसका महत्व नगण्य हो किन्तु वर्ग के निर्माण में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण है।

जासूसी उपन्यास :

गोपाल दास गहमरी ने अद्‌भुत लीला और गुप्तचर जैसे उपन्यासों की रचना की। वे भारतेन्दु और द्विवेदी युग की सन्धि सीमा पर थे। इसलिए उनके 200 के करीब जासूसी उपन्यास द्विवेदी युग की सीमा में जाते हैं। गहमरी जी का लक्ष्य पाठकों की जिज्ञासा और कौतूहल वृद्धि को सन्तुष्ट करना ही था।

रोमानी उपन्यास :

ठाकुर जगमोहन सिंह के 'श्यामा स्वप्न' को रोमानी उपन्यास कह सकते हैं। इसमें एक प्रेम कथा स्वच्छन्द शैली में चित्रित हुई है।

बंगला के अलावा अंग्रेजी, मराठी और उर्दू से भी कुछ उपन्यासों का अनुवाद भारतेन्दु युग में हुआ।

भारतेन्दु युग का मुख्य योगदान हिन्दी उपन्यास के पाठक तैयार करना था। इसने विभिन्न प्रकार के उपन्यासों की रचना परम्परा का सूत्रपात भी किया जिसका द्विवेदी युग में विकास हुआ।

द्विवेदी युगीन उपन्यास :

द्विवेदी युग भारतेन्दु युग की अपेक्षा अधिक समृद्ध है। किन्तु इस युग में सामाजिक जीवन की वास्तविक समस्याओं को लेकर गंभीर उपन्यास कम लिखे गए। रहस्यमयी अद्‌भुत घटना जाल में पाठकों की जिज्ञासा और कौहूतल वृद्धि की तृप्ति में ही उपन्यासकार ज्यादा संलग्न रहे।

द्विवेदी युग के उपन्यासों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। तिलस्मी–ऐय्यारी उपन्यास जासूसी उपन्यास, इतिहासाश्रित उपन्यास, सामाजिक उपन्यास।

1) तिलस्मी ऐय्यारी उपन्यास :

देवकीनन्दन खत्री के 'काजर की कोठरी', 'अनूठी बेगम', 'गुप्त गोदना', 'भूतनाथ' (प्रथम छः भाग) आदि इसी युग में प्रकाशित हुए। खत्री की सफलता से प्रभावित होकर हरिकृष्ण जौहरी ने 'भयंकर मोहनी' का मायामहल, 'कमल कुमारी' आदि किशोरी लाल गोस्वामी ने 'राजकुमारी', 'तिलस्मी शीशमहल का हाल', चांद वर्मा ने मोती महल की रचना की, दुर्गा प्रसाद खत्री ने अपने पिता के भूतनाथ उपन्यास को पूरा किया। डॉ. गोपाल राय के अनुसार 'ये उपन्यासों के भद्‌दे अनुकरण मात्र हैं। देवकीनन्दन खत्री की तरह परवर्ती तिलस्मी लेखक न तो कौतूहलोत्पादक घटनाओं की कल्पना में सफल हो सके, न उन्हें विश्वासोत्पादक बनाने में, न हिन्दू आदर्शों के चित्रण में, न भाषा के प्रयोग में। इन उपन्यासों की भाषा निष्प्राण, अशुद्ध तथा ग्राम्य है।

2) जासूसी उपन्यास :

गोपाल दास गहमरी के अधिकांश उपन्यास इसी काल में प्रकाशित हुए। वे अंग्रेजी के उपन्यासकार आर्थर कानन डायल से प्रभावित थे। गहमरी जी ने सनसनीखेज घटनाओं पर बल दिया। किन्तु उन्हें विश्वसनीय बनाने पर नहीं। रहस्य तत्व और बुद्धि कौशल की जटिलता का उनमें प्रायः अभाव है। हरिकृष्ण जौहर, जयराम दास, ठाकुर जंगबहादुर, किशोरी लाल गोस्वामी, देवकी नन्दन खत्री तथा दुर्गा प्रसाद खत्री आदि की रचनाएं भी विश्वसनीयता और कार्यकारण, सम्बन्ध की प्रायः उपेक्षा ही करती है।

3) इतिहासाश्रित उपन्यास :

इतिहासाश्रित उपन्यासों को डॉ. गोपाल राय तीन वर्गों में रखते हैं – क) ऐतिहासिक रोमांस ख) ऐतिहासिक उपन्यास गद्ध विशुद्ध ऐतिहासिक कथाएं।

क) ऐतिहासिक रोमांस :

ऐतिहासिक रोमांस में किशोरीलाल गोस्वामी की इस काल में रचित रचनाएं (गुलबहार का आदर्श, भ्रातृ प्रेम, तारा व क्षात्र कुल कमलिनी, सुलताना रजिया बेगम तथा गंगा प्रसाद गुप्त ने नूरजहां व संसार सुन्दरी, वीर पत्नी, कुंवर सिंह सेनापति तथा जयराम दास गुप्त ने कश्मीर पतन, माया रानी, नवाबी पाकिस्तान आदि का उल्लेख

किया जा सकता है। गोस्वामी जी की रचनाओं में इतिहास गौण और कल्पना प्रधान है। उन्होंने इतिहास प्रधान घटनाओं को भी बदल डाला है। इन उपन्यासों में गुप्त प्रेम सम्बन्धों, काम व्यापारों और रतिक्रियाओं का नग्न एवं अश्लील वर्णन किया गया है। गंगा प्रसाद गुप्त ने ऐतिहासिक वातावरण और विश्वसनीय पात्र चित्रण का ध्यान रखा पर प्रधानता अनैतिहासिक वातावरण की ही है। कुल मिलाकर इन उपन्यासों में इतिहास तत्व गौण है, कुतूहल, रहस्य, रोमांस प्रधान है।

ख) ऐतिहासिक उपन्यास :

ऐतिहासिक उपन्यासों में मुंशी देवी प्रसाद की 'रूठी रानी', ब्रजनन्दन सहाय लाल की 'लाल चीन', राम नरेश त्रिपाठी की 'वीरांगना' के अलावा हरिचरण सिंह चौहान, चन्द्रशेखर पाठक आदि की रचनाएं है। इनमें विषय चित्रण और शिल्प निर्दोश नहीं किन्तु इनमें हिन्दू वीरों और स्त्रियों के गौरवपूर्ण कृत्यों का चित्रण करते हुए इतिहास के साथ ऐतिहासिक रोमांसों जैसा खिलवाड़ अवश्य ही है।

ग) विशुद्ध ऐतिहासिक कथाएं :

कार्तिक प्रसाद खत्री कृत महाराज छत्रपति शिवाजी का जीवन चरित्र, जयन्ती प्रसाद उपाध्याय कृत पृथ्वीराज चौहान आदि रचनाओं को डॉ. गोपाल राय इतिहास मानते है, उपन्यास नहीं क्योंकि इनमें ऐतिहासिक घटनाओं का यथावत चित्रण हुआ है।

4) सामाजिक उपन्यास :

द्विवेदी युग के सामाजिक उपन्यासकारों में लज्जाराम शर्मा (आदर्श दम्पति, आदर्श हिन्दू आदि), किशोरी लाल गोस्वामी (लीलावती व आदर्श सती, अंगूठी का नगीना आदि) तथा ब्रजनन्दन सहाय (सौंदर्योपासक राधाकांत) उल्लेखनीय हैं। अयोध्या सिंह उपाध्याय ने अपने अधखिला फूल में धार्मिक अंधविश्वासों के कुपरिणामों को दिखाया तो ठेठ हिन्दी का ठाठ में उनका ध्यान मुख्यतः भाषा के विशिष्ट प्रयोगों पर रहा। इस युग की अन्य रचनाओ में मन्नन द्विवेदी कृत रामलाल और राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के वन जीवन व प्रेम लहरी उल्लेखनीय हैं।

द्विवेदी युग के सामाजिक उपन्यासों का विशेष बल तत्कालीन सामाजिक समस्याओं का निरूपण और समाज सुधार पर हैं। उनका विवेच्य हिन्दू समाज की नानाविध समस्याएं और उनका लक्ष्य हिन्दू धर्मानुसार चरित्र निर्माण का उपदेश है। बाल विवाह, विधवा विवाह और स्त्री स्वातन्त्र्य के बारे में इनके अलग–अलग विचार थे। गोस्वामी लक्ष्णमाचार्य ने अपने 'भीषण भविष्य' में बाल विवाह का समर्थन किया तो कुंवर हनुमत सिंह रघुवंशी ने चन्द्रकांता में बाल विवाह के कुपरिणामों को दिखाया। विधवा विवाह और स्त्री स्वातन्त्र्य का खुलकर समर्थन किसी ने नहीं किया। स्त्री को उच्च शिक्षा देने का समर्थन मात्र गंगा प्रसाद गुप्त ने किया। शेष ने थोड़ी बहुत शिक्षा को ही काफी माना। पातिव्रत्य की महिमा सभी ने गाई।

द्विवेदी युग एक ओर तिलस्मी–ऐय्यारी, जासूसी और ऐतिहासिक रोमासों की दृष्टि से उल्लेखनीय है तो दूसरी ओर सामाजिक उपन्यासों के लिए भी महत्वपूर्ण है, जिनमें जीवन में यथार्थ और समाज की समस्याओं की ओर पाठकों को उन्मुख किया। प्रेमचन्द (नवाबराय बनारसी) के उर्दू उपन्यास असरारे मआविद (उर्फ देवस्थान रहस्य), हम खुर्मा व हम सवाब (हिन्दी रूपांतर प्रेमा) भी इसी काल की उपज है। ये उनके प्रारम्भिक उपन्यास हैं किन्तु इनमें भी उनकी सामाजिक संलग्नता आदि परवर्ती उपन्यासों की विशेषताओं की झलक मिलती है।

प्रेमचन्द पूर्व (भारतेन्दु और द्विवेदी युग) में सामाजिक चेतना के निर्माण में आर्य समाज का कार्य उल्लेखनीय रहा। इस काल के कई उपन्यासकार इससे प्रेरित थे तो कुछ इसके विरोधी सनातन धर्म के अनुयायी थे। किन्तु यह भी साफ है कि सनातन धर्म की नई शक्ति के पीछे आर्य समाज की प्रतिक्रिया ही थी। स्वयं प्रेमचन्द भी आर्य समाज से प्रभावित थे।

अयोध्या सिंह उपाध्याय तथा मन्नन द्विवेदी इनमें से किसी के कट्टर समर्थक नहीं थे किन्तु युग की सुधारवादी चेतना से अप्रभावित नहीं रह सके। सुधारवादी सामाजिक चेतना ही इस काल के उपन्यासों को महत्वपूर्ण बनाती है। मनोरंजन प्रधान उपन्यासों का महत्व पाठकों की रूचि जागरण की दृष्टि से ही है। अब ये इतिहास की वस्तु ही रह गए हैं।

प्रेमचन्द युग :

प्रेमचन्द ने उर्दू में लिखना शुरू किया था। उर्दू में उनके 'असरारे मआबिद' उर्फ 'देवस्थान रहस्य', 'रूठी रानीः (जिसे अब प्रेमचन्द की रचना नहीं माना जाता), 'जलवाए–ईसार' जो बाद में 'वरदान'नामे से हिन्दी में 'सेवासदन' के बाद प्रकाशित हुआ तथा 'हम खुर्मा' व 'हम सबाब (हिन्दी रूपांतर 'प्रेमा') उर्दू में लिखे गए थे ओर द्विवेदी युग में प्रकाशित हो चुके थे। 'किशना' भी उसी काल की रचना है जो अभी तक अनुपलब्ध है। हिन्दी में प्रेमचन्द का आगमन 'सेवासदन' (1618) को प्रकाशन से हुआ। डॉ. गोपाल राय प्रमचन्द के इस उपन्यास के प्रकाशन को हिन्दी उपन्यास की एक महत्वपूर्ण घटना मानते है। 'सेवासदन' पूर्ववर्ती कथा–साहित्य का अभूतपूर्व विकास था इससे पहले कथा–साहित्य में या तो अजीबो–गरीब घटनाओं द्वारा कुतूहल और चमत्कार की दृष्टि रहती थी अथवा आर्य समाज और तत्समान अन्ये सामाजिक आन्दोलनों से प्रभावित समाज सुधारों का प्रचार ही उसकी उपलब्धि रह गई थी, जीवन की सही अभिव्यक्ति का साधन वह नहीं बन पाई थी। उर्दू में लिखित उपन्यासों में भी प्रेमचन्द ने उपन्यास को मनोरंजन से उपर उठाकर जीवन के सीधे सम्पर्क में लाने का प्रयत्न किया। आर्य समाज से उन्होंने भी प्रेरणा ग्रहण की किन्तु उसका यांत्रिक अनूसरण नहीं किया।

प्रेमचन्द के उपन्यास कुल पन्द्रह माने जाते हैं। असरारे मआविद (उर्फ देवस्थान रहस्य), प्रेमा (उर्दू पूर्व रूपहम खुमाव हम सबाब), 'किशना' (अनुपलब्ध), 'रूठी रानी', 'वरदान', 'सेवा सदन', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', कायाकल्प' , 'निर्मला', 'प्रतिज्ञा', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'गोदान', 'मंगलसूत्र' (अपूर्ण)। इस युग में सेवा सदन के पश्चान 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' पहल उर्दू में लिखे गए थे किन्तु छपे हिन्दी में। मूल रूपमें कायाकल्प ही पहले हिन्दी में लिखा गया। उसरारे मुआविद (देस्थान रहस्य) का हिन्दी रूपांतर करके 1662 में अमृतराय ने प्रकाशित करवाया। रूठी रानी भी अमृतराय द्वारा छपवाया जा चुका है। किन्तु हाल के मालूम होता है कि यह प्रेमचन्द का उपन्यास नहीं है।

कई आलोचको के अनुसार 'सेवासदन' में उनका ध्यान मुख्यतः तिलक, दहेज की प्रथा, समाज में वेश्याओं की स्थिति पर दिखाई देता है। किन्तु वास्तव में नारी की करूण सामाजिक अवस्था और उसकी स्वाधीनता पर केन्द्रित उपन्यास ही प्रतीत होता है। 'प्रेमाश्रम' में मुख्यतः कृषक जीवन की समस्याओं का सजीव चित्रण हुआ है। इसका अन्त जमींदार वर्ग के एक प्रतिनिधि द्वारा सर्वस्व त्याग के काल्पनिक समाधान में होती है। 'निर्मला'का विषय अनमेल विवाह है। रंगभूमि तत्कालीन समूचे परिदृश्य को चित्रित करने वाला उपन्यास है किन्तू मुख्यतया यह औद्योगीकरण और उससे जूड़ी हुई पूँजीवादी प्रवृतियों में अनावरण से सम्बद्ध है। कायाकल्प अपेक्षाकृत शिथिल उपन्यास है। इसमें जहां रानी देव प्रिया का अभौतिक कायाकल्प है, वहां उसके विलासपूर्ण सामन्ती व्यक्तित्व का कायाकल्प भी है। देशी राजाओं की विलासप्रियता और साम्प्रदायिकता की समस्या भी इसमें उठाई गई है। प्रतिज्ञा में विधवा समस्या को लेकर उसका आश्रम के रूप में समाधान प्रस्तुत किया गया है। 'गबन' में मध्य वर्ग की महत्वाकांक्षाओं और सफलताओं को उजागर किया गया है। 'कर्मभूमि' में सामाजिक और शासकीय परतन्त्रता को गाँव और शहर दोनों के सन्दर्भ में लिया है। गोदान प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इस उपन्यास में कृषक संस्कृति के ध्वंस की कथा प्रस्तुत हुई है।

स्थूल दृष्टि से देखने पर प्रेमचन्द के उपन्यास जमींदारों, पूँजीपतियों और सरकारी कर्मचारियों द्वारा जनता विशेष रूप से किसानों के शोषण, निर्धनता, अशिक्षा, वृद्ध विवाह, विधवा समस्या, साम्प्रदायिक विद्वेष

अस्पृश्यता, मध्यवर्ग की कुण्ठओं, दहेज, घर और समाज में नारी की स्थिति के चित्रण से सम्बद्ध हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है कि प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को अपने युग की समस्याओं को प्रतिबिम्बित करने के लिए अपना माध्यम बनाया था किन्तु उनका विशेष महत्व इसीलिए है कि तात्कालिक प्रसंगिकता के साथ–साथ मनुष्य की यातना की निरन्तरता और उसके विरूद्व मानवीय संघर्ष की निरन्तरता को भी व्यक्त करते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों में उनकी विचारधारा के विकास की पहचान भी होती है। उनकी रचनाओं में आदर्शवादी समाधानों का महत्व उत्रोत्तार कम होता चला गया और यथार्थ को अधिक प्रश्रय मिलने लगा।

यों तो प्रेमचन्द के उपन्यासों में तभी वर्गों, धर्मों, मनावृतियों के पात्र समाहित हैं, किन्तु प्रमुखता किसानों को मिली है। मध्यवर्ग को भी उन्होंने उपन्यासें का विषय बनाया है, अभिजात वर्ग का चित्रण उन्होंने बहुत कम किया है। उनके उपन्यास मुख्यतः गाँवों और कसबों पर केन्द्रित हैं, नगर जीवन के कोलाहल, भीड़, घुटन आदि उनके उपन्यासों में अंकित नहीं हुए।

प्रेमचन्द के औपन्यासिक शिल्प में निरन्तर विकास मिलता है। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में तिलस्मी, ऐय्यारी उपन्यासों की तरह चमत्कारपूर्ण घटनाओं की नियोजना और ग़ैर ज़रूरी वर्णनों, विवरणों की भरमार और किस्सागोई मौजूद है, किन्तु अपनी रचना यात्रा में वे वैचारिक धरातल के साथ–साथ शिल्प के धरातल पर प्रगति करते हुए मालूम होते हैं। चित्रणीय विषय के अनुरूप शिल्प के अन्वेषण का प्रयोग हिन्दी उपन्यास मे पहली बार प्रेमचन्द ने किया। उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए दृश्य, सजीव गतिमान और नाटकीय हैं। उनकी उपन्यास कला की विशिष्टता होरी, सुमन, निर्मला, सूरदास जैसे अविस्मरणीय पात्रों के निर्माण में है जो उपनी सबलताओं–निर्बलताओं जय–पराजयों के आधार पर जीवन्न व्यक्तित्वों से ही सम्पन्न नहीं हुए, समग्र मानवीय जाति की आशाओं–आकांक्षाओं, गुण–कमज़ोरियों के प्रतिनिध भी बन गए हैं। प्रेमचन्द की भाषा सरल और बोलचाल की है। किन्तु निर्जीव, एकरस और अकाव्यात्मक नहीं। डॉ. गोपाल राय के शब्दों में इतनी सरल भाषा को एक साथ इतने स्तरों पर काम में लाना प्रेमचन्द जैसे उपन्यासकार ही कर सकते हैं। भाषा के सटीक आर्थिक और व्यंजनापूर्ण प्रयोग में वे अपने समकालीन ही नहीं, बाद के उपन्यासकारों को भी पीछे छोड़ जातें हैं। वस्तुतः प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम का रूप प्रदान किया।

प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों में 'माँ', 'भिखारिणी' के लेखक विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ने प्रेमचन्द का ही अनुकरण किया। उनके इस काल के उपन्यास 'हृदय की प्यास', 'अमर अभिलाषा'आदि हैं। प्रताप नारायण श्रीवास्तव के 'बिदा' और 'विजय' आदर्शवादी उपन्यास हैं। भगवती प्रसाद वाजपायी (मीठी चुटकी, अनाश्रा पत्नी, त्यागमयी पतिता की साधना) की रचनाओं पर प्रेमचन्द और गांधी ही नहीं, मार्क्स, फ्रायड़ छाप भी है। उनके उपन्यास मुख्यतः मध्यवर्गीय व्यक्ति के मनोविश्लेषण और विवाह तथा प्रेम के बारे में है। गांधीवादी फार्मूले को लेकर लिखे गए उपन्यासों में श्री सियी रामगुप्त के अन्तिम आकांक्षा और उषा देवी मित्रा का 'वचन' का मोल भी थे।

पांडेय बेचन शर्मा उग्र की सामाजिक यथार्थवादी कृतियों, 'चन्द हसीनों के ख़तूत', 'दिल्ली का दलाल', 'बंधुआ की बेटी', 'चाकलेट', 'चुम्बन' आदि भी इसी युग में प्रकाशित हुए। उग्र जी की रचनाएं समाज की गन्दगी और दबी ढकी करतूतों का भंडाफोड़ करती हैं। इसी परम्परा में ऋषभ चरण जैन भी आते है जिन्होंने वेश्यावृति, पंडे–पुजारियों की पाप लीला, स्त्रियों का व्यापार आदि विषयों पर कलम चलाई है। वह परम्परा के पोषक नही समझे जा सकते। इनमें व्यावसायिकता और रूग्णता के लक्षण प्राप्त हैं। इनकी रचनाओं को घासलेटी साहित्य कहा गया है।

प्रसाद ने भी 'कंकाल', 'तितली', 'इरावती' (अपूर्ण) की रचना की। 'तितली' में कृषक जीवन का सामान्य फैलावमात्र है। कंकाल में समाज की त्याज्या, अवैध और अज्ञात कुलशील संतानों की कहानी है। विषय के चुनाव

में प्रकृतिवादी किन्तु पात्रों की रचना में रोमानी दृष्टि से प्रसाद इस क्षेत्र में कोई विशिष्ट पहचान नहीं 'अलका', 'प्रभावती' भी इसी काल में प्रकाशित हुए। प्रसाद जी की तुलना में ये उपन्यास लघु है। उनकी गणना प्रमुख उपन्यासकारों में नहीं होती। भाषा का निखरा रूप अवश्य मिलता है।

प्रेमचन्द युग में ऐतिहासिक उपन्यास को ठोस जीवन पर खड़े करने वाले यशस्वी लेखक वृन्दावन लाल वर्मा का योगदान भी उल्लेखनीय है। 'गढ़ कुम्भार' 'विराटा की पद्मिनी' जैसी अमर कृतियाँ भी इसी युग में लिखी गईं।

प्रेमचन्द युग में शिव पूजन सहाय के महत्व की पहचान बहुत बाद में हुई। उनका 'देहाती दुनिया' उपन्यास प्रचलित रूढ़ि को तोड़ने का साहसिक कदम था। किन्तु उसके महत्व को आँचलिक उपन्यासों के आविर्भाव के बाद ही पहचाना गया।

भगवती वर्मा का 'चित्रलेखा' इस युग का चर्चित उपन्यास है। इसमें गांधीवाद या प्रेमचन्दीय नैतिकता सुधारवाद और पाप पुण्य निर्णय के सममुख प्रश्न चिन्ह लगा। चित्रलेखा से भी अधिक जैनेन्द्र के परख और सुनीता, विशेष रूप से सुनीता ने युग परवर्तन की सूचना दी। जैनेन्द्र ने प्रेमचन्द की तरह व्यापक सामाजिक जीवन को अपना विषय न बनाकर व्यक्ति मानस की शंकाओं उलझनों और गुत्थियों का चित्रण किया। उन्होंने मनोवैज्ञानिक यथार्थ को पहली बार हिन्दी उपन्यास में जगह दी। जैनेन्द्र ने प्रेमचन्द की तरह व्यापक सामाजिक जीवन को अपना विषय न बनाकर व्यक्ति मानस की शंकाओं, उलझनों और गुत्थियों का चित्रण किया। उन्होंने मनोवैज्ञानिक यथार्थ को पहली बार हिन्दी उपन्यास में जगह दी। उन्होंने उसे नई और नए शिल्प से समृद्व किया।

प्रेमचन्द युग में उपन्यास को मनोरंजन के धरातल से उठाकर जीवन के साथ जोड़ने का प्रयास किया गया। इस काल के उपन्यास अधिकतर सामाजिक विषयों और समस्याओं से सम्बद्ध हैं। इनके उपन्यासों में मजदूर को विशेष रूप से किसान को उपन्यास के केन्द्रीय स्थिति प्राप्त हुई है। अंग्रेज़ी सत्ता के प्रश्रय में पल से साम्प्रदायिकता पर भी प्रहार हुआ।

पारिवारिक जीवन और उसकी समस्याओं में संयुक्त परिवार का विघटन, विवाह और नारी को उपन्यास का विषय बनाया है। विवाह सम्बंधी समस्याओं का निरूपण और समाधान का प्रयास हुआ। कुल मिलाकर ये अपने दस्तावेज हैं। प्रेमचन्द युग का सामाजिक राजनीतिक इतिहास अपने वैविध्य के साथ इनमें सुरक्षित है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि इस युग में उपन्यास के मौलिक क्षेत्र, स्वरूप और उद्देश्य को ना सिर्फ पहचाना गया बल्कि उसे समृद्ध भी किया गया। वास्तविक अर्थों में प्रेमचन्द युग से ही उपन्यास युग प्रारम्भ हुआ। 1630 में प्रेमचन्द के निधन के साथ हिन्दी उपन्यास साहित्य के युग की समाप्ति हुई। डॉ. सावित्री विन्हा की राय में यह घटना तो केवल एक संयोग में धुरी बन गई। सच्चाई यह है कि इस वर्ष के आसपास हिन्दी उपन्यास में गहराइयों और बारीकियों की खोज आरम्भ हो जाती है और व्यापक आयाम के आदर्शों की काल्पनिक ऊँचाइयों में उतर कर यथार्थ के ठोस धरातल की ओर अग्रसर होने लगते हैं।

प्रेमचन्द के समय में ही मानव चरित्र के विश्लेषण–व्याख्यान के लिए मनोवैज्ञानिक स्पर्श दिए जाने लगे थे। उनका रूप सत ही था और कभी–कभी ही उसकी झलक दिखाई देती है। जैनेन्द्र और अज्ञेय ने उपन्यास को अन्तर्मुखी मोड़ दिया और वे मन की गहराइयों में उतरे। दूसरी धारा समाजिक है। प्रेमचन्द युग में सामाजिक उपन्यास की दो धाराएं हो गईं। एक वे हैं, जो सामाजिक जीवन का यथार्थ तो लेते हैं, किन्तु मार्क्सवादी या किसी अन्य वाद से जूड़ी दृष्टि नहीं अपनाते तो दूसरे वे हैं, जो मार्क्सवादी दृष्टि से ही सामाजिक जीवन और समस्याओं का विवेचन विश्लेषण करते हैं। इनका अलग वर्ग बनाते हुए, उन्हें समाजवादी उपन्यास भी कहा जाता है।

प्रेमचन्दोतर युग में उपन्यास साहित्य का बहुमुखी विकास हुआ है। प्रवृत्ति तो सामाजिक उपन्यासों की ही रही, किन्तु मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक और आँचलिक उपन्यासों की भी रचना पर्याप्त मात्रा में हुई है।

सामाजिक उपन्यास :

यद्यपि प्रेमचन्दोत्तर काल में अधिकांश उपन्यास यथार्थवादी परम्परा में आते हैं, किन्तु भगवती प्रसाद वाजपेयी, प्रताप नारायण श्रीवास्तव और सियाराम शरणगुप्त आदि कुछ लेखकों की एक सीमा प्रेमचन्द की परम्परा और उसके आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का अनुसरण करते रहे। भगवती प्रसाद वाजपेयी (पतिता की साधना, पिपासा, दो बहनें, त्यागमयी, नियंत्रण, चलते–चलते आदि), प्रताप नारायण श्रीवास्तव (विदा, विजय बयालीस, विसर्जन) और सियाराम शरणगुप्त (गोद, अन्तिम आकाश) के अधिकांश उपन्यासों में लेखक का ध्यान मुख्य घटनाओं पर केन्द्रित है और उनके संयोजन में आकस्मिकता के प्रति आग्रह भी है। पात्रों की परिस्थितियों और उनके व्यक्तित्व में द्वंद्व और अन्तर्द्वद्व को प्रायः स्थान नहीं दिया गया।

उनके उपन्यासों में शिव और मंगल तत्व की प्रधानता और विद्रोही तत्वों का स्पर्शमात्र है। प्राचीन और नवीनता को लेकर भी दृष्टि सामंजस्यवादी है। प्रताप नारायण श्रीवास्तव का ध्येय समाजोन्मुखी है किन्तु उनके पात्रों में हिंसा और प्रतिरोध का भाव नहीं है। गांधीवाद अन्त चेतनामूलक क्रांति उनका जीवनादर्श है। सियाराम शरण गुप्त विचार और व्यवहार दोनों दृष्टियों में गांधीवादी थे। उनके उपन्यासों में घृणा, प्रतिहिंसा का कोई स्थान नहीं। भगवती प्रसाद वाजपायी ने व्यक्ति को महत्व दिया किन्तु समाज की इकाई के रूप में। उनके उपन्यासों में नैतिक समस्याओं, सामाजिक सीमाओं और शक्तियों तथा अन्य ज्वलंत मान्यताओं और आदर्शों का समावेश हुआ। इसके अलावा राधिकारमण प्रसाद सिंह (राम रहीम, टूटा तारा, सूरदास) भी प्रेमचन्द युगीन संवेदना और शैली के उपन्यासकार हैं।

सामाजिक उपन्यासकारों में उल्लेखनीय भगवती चरण वर्मा (टेढ़ मेढ़े रास्ते, आखरी दाँव, भूले बिसरे चित्र, सामर्थ्य और सीमा, सबहि नचाव राम गोसाईं, रेखा आदि) ने उपन्यासकारों का कथ्य मध्यवर्गीय समाज की द्वन्द्वातमक स्थितियों और पात्रों का चित्रण प्रखरता और गहराई से किया। उपेन्द्रनाथ अश्क (गिरती दीवारें, गर्म राख, बड़ी–बड़ी आँखें, शहर में घूमता आइना, एक नन्ही–सी कन्दील आदि) ने मध्यवर्ग की विभिन्न समस्याओं का उद्‌घाटन किया है। उन्होंने विभिन्न आर्थिक, सामाजिक समस्याओं को व्यापक सामाजिक प्रवेश में देखा और व्यक्ति की नैतिक वर्जनाओं, मानसिक कुंठाओं और विकृतियों का चित्रण किया है। अमृतलाल नागर (बूंद और समुद्र, अमृत और विष, महाकाल आदि) ने व्यक्ति और समाज के समन्वय की दृष्टि अपनाई है।

कुछ उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं–धर्मवीर भारती (गुनाहों का देवता, सूरज का सातवा घोड़ा), मोहन राकेश (अंधेरे बंद कमरे, न आने वाला कल, अन्तराल), नरेश मेहता (यह पथ वन्धु था, डूबते मस्तूल आदि), राजेन्द यादव (सारा आकाश, एक इंच मुस्कान आदि), शानी (काला जल), निर्मल वर्मा (वे दिन, लाल टीन की छत, एक चिथड़ा सुख) गिरिराज किशोर (लोग, जुगलबन्दी, पथा प्रस्तावित परिशिष्ट), भीष्म सिंह (तमस, वसन्ती) इधर कुछ उपन्यास ऐसे भी मिलते हैं जिनमें राजनीतिक घटनाओं व प्रश्नों को ही केन्द्रीय स्थिति प्राप्त हुई। इसमें समकालीन राजनीति की विसंगतियों को उघाड़ते हुए निर्ममता से उस पर पड़े हुए मुखौटों को छीला–तराशा गया है। राजनीतिक चेतना के उल्लेखनीय उपन्यास हैं – 'सबहि नचावत राम गुसाई, (भगवती चरण वर्मा), 'एक और मुख्यमंत्री' (यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र) 'हरा समन्दर गोपी चन्द' (लक्ष्मी नारायण लाल), 'काली आँधी' (कमलेश्वर), 'हीरक जयन्ती' (नागार्जुन), 'समय साक्षी है' (हिमांशु जोशी), 'महाभोज' (मन्नु भण्डारी) 'अनित्य' (मृदुला गर्ग) आदि।

सामाजिक उपन्यास वर्ग के अन्तर्गत महिलाओं के उपन्यासों का अपना महत्व है। उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर आज की नारी की सामाजिक नियति और मानसिकता को बड़ी गहराई से उभारा है।

इन लेखिकाओं में मन्नू भण्डारी (आपका बंटी), कृष्णा सोबती (सूरजमुखी अंधेरे के, ज़िन्दगीनामा), शशि प्रभा शास्त्री (सीड़ियां), पंजुल भगत (अनारो), निरूपमा सेवती (मेरा नरक अपना है), सूर्यबाला (मेरे सन्धि पद), ममता कालिया (बेघर) उल्लेखनीय हैं।

सामाजवादी उपान्यासकारों ने मनुष्य के सामाजिक यथार्थ को मार्क्सवादी दृष्टि से परखा है और उसमें भी आर्थिक पक्ष को समाजवादी उपन्यासकारों में यशपाल प्रमुख हैं। यशपाल के उपन्यास (मनुष्य के रूप, झूठा सच, दादा कामरेड, देशद्रोही, मेरी तेरी उसकी बात आदि) में वर्ग संघर्ष की उभरती हुई चेतना को प्रस्तुत किया है। उन्होंने समाज के खोखलेपन को उघाड़ा है।

रांगेयराघव ने (घरोंदा, हजूर उबाल, कब तक पुकारूँ) मार्क्सवाद के व्यावहारिक और सैद्धांतिक पक्षों को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने सामान्यतः मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं को अपने उपन्यासों का विषय बनाया। अमृतराय (बीज, हाथी के दांत, बागफनी का देश आदि) के उपन्यासों में साम्यवादी सिद्वांतों का खुला व्याख्यान हुआ है। समाजवादी उपन्यासों को सैद्वांतिक और बौधिकमीनर से उतार कर जनता के बीच लाने का श्रेय नागार्जुन को है। बाबा बछेसरनाथ, 'रतिनाथ की चाची' उनके प्रमुख उपन्यास हैं।

मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषण उपन्यास :

जिस प्रकार मार्क्सवाद से प्रभावित उपन्यासकारों ने समाजवादी उपन्यासों की रचना की इसी प्रकार मनोविश्लेषण शास्त्र से प्रभावित उपन्यासकारों ने मनुष्य के अन्तर्मन की गहराइयों का विश्लेषण करने के लिए उपन्यास को माध्यम बनाया। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार युंग और एडलर के सिद्धांतों के आलोक में यह दिखाते हैं कि मानवीय जीवन की समस्याओं और विसंगतियों के मूल में बाह्य परिस्थितियों नहीं वरन् व्यक्ति के अन्तर्मन में तरंगित होने वाली आदिम वृतियां ही हैं। इन उपवन्यासों का लक्ष्य पात्रों का मनोवैज्ञानिक शोध करना है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द जोशी और डॉ. देवराज उल्लेखनीय हैं। (सुनीता, त्याग–पत्र, परख, कल्याणी आदि) जैनेन्द्र ने बहिर्जगत् के सत्य की अवहेलना करके भाव जगत् के सत्य को पकड़ना चाहा है।

इलाचन्द्र जोशी 'संन्यासी', 'प्रेम और छाया', 'जिप्सी', 'पर्दे की रानी' के उपन्यासों पर सीधे–सीधे फ्रायड और युंग का प्रभाव है। जोशी ने अज्ञात चेतन लोक के पीछे दबी छिपी कामनाओं, कुंठित प्रवृत्तियों को अभिव्यक्ति दी है। मुक्तिपथ (1950) से पूर्व की रचनाओं के उनके पात्र असामान्य हैं। वे किसी न किसी ग्रंथि का शिकार हैं। इनके बाद उपन्यासों (जहाज़ का पंछी, चक्र, भूत का भविष्य) में परिदृश्य का विस्तार और सामाजिकता का समावेश दिखता है।

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को प्रौढ़ रूप देने का श्रेय अज्ञेय (शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप) को है।

इसी परम्परा में डॉ. देवराज (पथ की खोज, बाहर भीतर, अजय की डायरी) भी उल्लेखनीय है।

ऐतिहासिक उपन्यास :

ऐतिहासिक उपन्यास भी प्रेमचन्दोत्तर काल में पर्याप्त संख्या में सामने आए हैं। इस वर्ग के उपन्यासकारों में वृन्दावन लाल वर्मा प्रमुख हैं। 'मृगनयनी', 'झांसी की रानी', 'मुसाहिवजू' 'माधव राव सिंधिया' आदि उनके उपन्यासों की अधिकतर घटनाएं विख्यात हैं और किंवदन्तियों, जनश्रुतियों और परम्पराओं के सूत्रों से जुड़ी हुई हैं। इतिहास के साथ कल्पना, यथार्थ के साथ रोमांस उन्हें निराली छवि प्रदान करता है। अमृतलाल नागर के 'सुहाग के नुपूर' और 'शतरंज के खिलाड़ी' इसी प्रकार की रचनाएं हैं। यशपाल का 'दिव्या' ऐतिहासिक कल्पनामात्र है। रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यास दो प्रकार के हैं। एक वे जिनमें ऐतिहासिक पात्र और ऐतिहासिक युग चित्रित हैं किन्तु कथानक की दृष्टि से लेखक ने छूट ली है जैसे 'मुर्दों का टीला', 'चीवर'। दूसरे वे जिन्हें लेखक ने स्वयं औपन्यासिक जीवनी कहा है। जैसे 'देवकी का बेटा', 'रत्ना की बात', लोई का ताना'।

ऐतिहासिक उपन्यासों में हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। जैसे– 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारू चन्द्र लेख' और 'पुनर्नवा'।

आँचलिक उपन्यास :

आँचलिक उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर युग में स्वाधीनता के बाद के दौर की विशेष उपलब्धि है। आँचलिक उपन्यास किसी विशिष्ट भू भाग या समाज का समग्र चित्रण करता है। डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार उसका सम्बंध किसी अँचल या जनपद से होता है, ऐसा नहीं, वह जनपद की ही कथा है। आँचलिक उपन्यासकारों में फणीश्वर नाथ रेणु श्रेष्ठ माने जाते हैं। 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' उनके महत्त्वपूर्ण उपन्यास है।

अन्य उपन्यासों में उदय शंकर भट्ट का 'सागर लहरें और मनुष्य', देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिये', रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', शैलेश मटियानी के 'हौलदार' राजेन्द्र अवस्थी के 'जंगल के फूल', 'सूरज किरण की छांव और नागार्जुन के 'बलचनमा', 'वरूण के बेटे' आदि की गणना की जाती है।

ग्रामाँचल के उपन्यास :

इसके अन्तर्गत वे रेणु के उपन्यासों को सही आँचलिक उपन्यास मानते हैं। नागार्जुन का 'बलचनमा' उदयशंकर भट्ट का 'सागर–लहर' और 'मनुष्य', राही मासूम रजा का 'आधा गांव', रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ', 'हिमांशु का 'रथ के पहिए' भी इसी वर्ग में आते हैं।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास :

इसके अन्तर्गत धर्मवीर भारती के 'गुनाहों का देवता और डॉ. देवराज के 'पथ की खोज', 'बाहर भीतर', 'अजय की डायरी' को सम्मानित किया गया है।

सामाजिक चेतना के उपन्यास :

मन्मथनाथ गुप्त, भैरव प्रसाद गुप्त और अमृतराय जैसे मार्क्सवादी दृष्टिकोण के प्रतिबद्ध लेखकों के उपन्यासों के अलावा राजेन्द्र यादव (प्रेत बोलता है, उखड़े हुए लोग) तथा लक्ष्मी नारायण लाल (धरती की आँखें, काले फूल का पौधा) के उपन्यास भी इसके अन्तर्गत आते हैं।

प्रयोगशील उपन्यास :

प्रयोगशील उपन्यास में कहानी का तत्त्व क्षीण हो गया है। इनमें अपने क्रियाकलाप के प्रति सचेत एवं तराशे हुए पात्र भी नहीं मिलते। ज़िन्दगी इनमें पूरे तौर पर पर विश्लेषित न होकर चेतना प्रवाह और स्वप्न सृष्टि के साथ जुड़ गई है। प्रतीक टाइम–शिफ्ट के नए शिल्प के दर्शन भी इसमें होते हैं। प्रभाकर माचवे, धर्मवीर भारती, गिरिधर गोपाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के उपन्यास इस वर्ग में रखे जा सकते हैं।

आधुनिक बोध के उपन्यास :

यंत्रीकरण और दो महायुद्धों के बीच अस्तित्ववादी चिंतन के फलस्वरूप आधुनिकता की जो स्थिति उत्पन्न हुई है, उसे लेकर जिन उपन्यासों की रचना हुई है उनमें मोहन राकेश (अंधेरे बन्द कमरे), श्रीकांत वर्मा (दूसरी बार), महेन्द्र भल्ला (एक पति के नोट्स), राजकमल, चौधरी (मछली मरी हुई) के उपन्यास की गणना की जा सकती है।

महानगरीय उपन्यास को डॉ. बच्चन सिंह ने तीन वर्गो में बांटा है :

(क) यौन विसंगतियों में पनाह खोजने वाले उपन्यास, यथा 'बेघर' (ममता कालिया) 'सूरजमुखी अंधेरे के' (कृष्णा सोबती)।

(ख) दी हुई मानव स्थितियों मिसफिट व्यक्तियों को चित्रित करने वाले उपन्यास तथा 'एकांगी नहीं राधिका' (उषा प्रियंवदा), 'आपका बंटी' (मन्नू भंडारी)।

(ग) व्यवस्था की घुटन को अपनी नियति मानने या उनके विरुद्ध विद्रोह करने वाले, यथा – 'यह पथ बन्धु था' (नरेश मेहता)।

(क) **अन्तर्मुखी वैयक्तिकता का चित्रण करने वाले उपन्यास**

(क) सैक्स के इर्द–गिर्द घूमती औपन्यासिक संवेदना 'नदी के द्वीप' (अज्ञेय), 'मछली मरी हुई' (राज

कमल), 'एक पति के नोट्स' (महेन्द्र भल्ला) आदि।

(ख) आत्म निर्वासन अजनबीपन और अकेलेपन के अनुभवों की औपन्यासिक परिणति, 'पचपन खम्भे लाल दीवारें, (उषा प्रियंवदा), 'अंधेरे बन्द कमरे (मोहन राकेश), 'अपने अपने अजनबी (अज्ञेय), 'वे दिन' (निर्मल वर्मा), यह पथ बन्धु था (नरेश मेहता) आदि।

व्यक्ति– केन्द्रित उपन्यासों की तुलना में वे उपन्यास ज़्यादा लिखे गए हैं, जिनमें समकालीन यथार्थ का चित्रण हुआ है। इनमें राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विसंगतियों की बड़ी सूक्ष्म पहचान उपलब्ध होती है। समस्याओं के प्रति लेखक की सामाजिक दृष्टि इनकी खास विशेषता है। इन उपन्यासों को डॉ. प्रेमकुमार परिवेश बोध और सामाजिक प्रतिबद्धता से लैस उपन्यास कहते हैं और उनके तीन वर्ग करते हैं।

(ख) **परिवेश बोध और सामाजिक प्रतिबद्धता से लैस उपन्यास**

(1) ग्रामाँचल की सही और सच्ची पहचानः ग्रामाँचल की अच्छाइयों, बुराइयों को वस्तुवादी ढंग से प्रस्तुत करने वाले उपन्यासों में 'मैला आँचल' (रेणु), बलचनमा (नागार्जुन), 'कब तक पुकारूँ' (रांगेय राघव), 'आध ा गाँव' (राही मासूम रज़ा), 'जाल टूटता हुआ' (रामशरण मिश्र), 'राग दरबारी' (श्री लाल शुक्ल) आदि की गणना की जा सकती है।

(2) नगर और महानगर के अनुभवों को लिपिबद्ध करने वाले उपन्यासों में 'बूंद और समुद्र' (अमृत लाल नागर), 'उखड़े हुए लोग' (रामचन्द्र यादव), 'अपना बंटी', (मन्नू भंडारी), 'धूप छांवी रंग' (गिरीश अस्थाना), 'मुर्दा घर' (जगदम्बा प्रसाद दीक्षित) को लिया जा सकता है।

(3) राजनीतिक प्रश्नों और विसंगतियों से सीधा साक्षात्कार यथा 'हीरक जयन्ती' (नागार्जुन), 'एक और मुख्यमन्त्री' (यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र), 'समय साक्षी है' (हिमांशु जोशी) आदि उपन्यास है।

(ग) **ऐतिहासिक चेतना के उपन्यास :** ये उपन्यास अतीत के धरातल पर प्रतिबिम्बित होने के बावजूद आधुनिक भाव बोध से जुड़े हैं यथा 'मृगनयनी' (वृन्दावन लाल वर्मा), 'पुनर्नवा' (हज़ारी प्रसाद द्विवेदी), 'एकदा नैमिषारण्यो', 'तांबे के पैसे' (आनन्द प्रकाश जैन) आदि।

पाठ संख्या : **2.2**

हिन्दी कहानी

2.2 हिन्दी कहानी

आधुनिक हिन्दी कहानी का प्रारम्भ अंग्रेज़ी और बंगला साहित्य के सम्पर्क, सुधारवादी आन्दोलन, तत्कालीन परिस्थिति, नई शिक्षा पद्धति के परिणामस्वरूप हुआ है। सरस्वती, सुदर्शन और इन्दु पत्रिकाओं ने इसके विकास में उल्लेखनीय भूमिका अदा की है।

हिन्दी की प्रथम कहानी :

हिन्दी की प्रथम कहानी का श्रेय किसे दिया जाए? इसके बारे में विद्वानों में मतभेद हैं। साधारणतया आठ कहानियां इस विवाद में सम्मिलित की जाती हैं–

'रानी केतकी की कहानी' (इंशा अल्ला खाँ 1803), 'इन्दुमती' (किशोरी लाल गोस्वामी, 1900), 'गुलबहार' (किशोरी लाल गोस्वामी), 'प्लेग की चुड़ैल' (मास्टर भगवान् दास बी. ए. 1903), 'दुलाई वाली' (1907 बंग महिला) 'उसने कहा था' (चन्द्रधर शर्मा गुलेरी 1915) इस समय सूची में रानी केतकी की कहानी पहली है। किन्तु अधिकांश विद्वान् इसे हिन्दी की पहली तो क्या, कहानी मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं।

अप्राकृतिक और अतिप्राकृतिक तत्त्वों के समावेश, अस्वाभाविक और अयथार्थ कौतूहल की सृष्टि के प्रयास अनुप्रास प्रधान, पद्यात्मक, प्राचीन ढंग की भाषा और प्राचीन रूढ़ शिल्प के प्रयोग के कारण इसे कहानी मानना अनुचित होता। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल 'इन्दुमति' को पहली कहानी मानने को तैयार हैं, बशर्ते कि वह मौलिक हो। बहुत से विद्वान् इसको शैक्सपीयर के 'टैम्पेसट' का रूपान्तर मानते हैं या किसी बंगला कहानी की छाया मानते हैं, किन्तु आलोचकों के इस दल ने यह भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वह न तो 'टैम्पेस्ट' की रूपांतर है और न बंगला कहानी की छाया है। इधर डॉ. बच्चन सिंह ने किशोरी लाल गोस्वामी की 'प्रणयिनी पत्रिका (1887) और श्री देवी प्रसाद वर्मा ने माधव राव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' (1901) को श्रेय देने का आग्रह किया है। डॉ. मुरारी लाल शहित ने माधव प्रसाद मिश्र की 'लड़की की बहादुरी' (1904) को हिन्दी की पहली कहानी सिद्ध करने का प्रयास किया है। इधर देवी प्रसाद वर्मा ने जनवरी 1877 की सारिका में एक टिप्पणी के माध्यम से जनवरी 1900 में छपी माधव राव सप्रे की एक अन्य कहानी 'सुभाषित रत्न' को संभावित प्रथम मौलिक कहानी के रूप में प्रस्तुत किया है। डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ रैवरैड जो न्यूटन कृत 'जमींदार का दृष्टांत (1871) को हिन्दी की पहली कहानी मानने का समर्थन करते हुए कहते हैं कि लगता यही है कि ईसाई मिशनरियों द्वारा अनजाने ही हिन्दी कहानियों की आधारशिला डाल दी गई। इसी के साथ ही अनाम लेखक की 'छली अरब की कथा' (1893) भी प्रकाश में आई है।

इन कहानियों को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह बहस अभी समाप्त नहीं हुई। अभी तक अधिकांश विद्वान् 'इन्दुमति' को पहली कहानी मानते रहे हैं। इधर माधव राव सप्रे की एक 'टोकरी भरी मिट्टी' को अधिक स्वीकृति मिलने लगी है। वास्तव में यह मानना अधिक सही होगा कि सरस्वती के प्रकाशन के बाद से हिन्दी की परम्परा अविरल रूप से हुई है। इसके साथ सुदर्शन और इन्दु पत्रिकाओं ने भी इसे विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। प्रेमचन्द की पहली हिन्दी कहानी 'मौत' सन् 1915 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। 1919

में प्रसाद जी ने इन्दु पत्रिका निकाली। उपर्युक्त कहानियों के इलावा इसमें प्रकाशित प्रसाद जी के 'ग्राम' कहानी भी उल्लेखनीय है, जिसे कुछ विद्वानों ने हिन्दी की प्रथम कहानी माना है। राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह की प्रथम कहानी 'कानों में कँगना' 1913 ई में ही प्रकाशित हुई थी। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'सुखमय जीवन' 1911 में छपी थी। 'बुद्ध का कांटा' 1911-1915 के बीच की है।

गुलेरी जी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' 1915 में प्रकाशित हुई। अतः इसे प्रेमचन्द युग में ही सम्मिलित करना होगा।

प्रेमचन्द पूर्व–युग की कहानियों से स्पष्ट है कि वे प्रारम्भिक या प्रयोगशील कहानियां थीं। यद्यपि इन कहानियों में विषय और शैली दोनों का वैविध्य मिलता है तथा उनमें वे सभी बीज भी निहित हैं जिनका विकास अगले चरणों में हुआ तथापि उनमें परवर्ती कहानियों जैसी न तो सूक्ष्मता है और न परिष्कार। इन कहानियों का लक्ष्य मनोरंजन तथा उपदेश है। उपदेशात्मकता में लेखकों की समाज संलग्नता की पहचान मिलती है। उनका झुकाव आदर्श की ओर है, किन्तु यथार्थ के प्रति रूझान भी है। ये कहानियां मुख्यतः वर्णनात्मकता शैली में लिखी घटना प्रधान कहानियां ही हैं।

प्रेमचन्द युग :

1915 में हिन्दी कहानी का दूसरा चरण आरम्भ होता है। डॉ. इन्द्रनाथ मदान इसे हिन्दी कहानी की विकास यात्रा का पहला पड़ाव मानते हैं। जीवन दृष्टि, संवदेना और रचना प्रक्रिया सभी दृष्टियों से प्रेमचन्द और प्रसाद एक–दूसरे से अलग प्रतीत होते हैं और उनके कृतित्व से हिन्दी कहानी कई धाराओं में विभाजित होती है। प्रेमचन्द के महत्त्व के कारण इसे प्रेमचन्द युग भी कहा जाता है। प्रेमचन्द की पहली कहानी 'मौत' 1915 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। इससे पूर्व 1907 में उनकी 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' उर्दू पत्रिका 'ज़माना' में छप चुकी थी। दूसरी कहानी 'सांसारिक प्रेम और देश प्रेम' 1908 में छपी इसके अलावा 'शौक', 'पुरस्कार और 'शेख मखसूद' को मिलाकर 1908 में उनका 'सोजेवतन' नामक प्रसिद्ध संग्रह छपा, जिसे अंग्रेज़ी सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा। अब तक प्रेमचन्द की पौने तीन सौ कहानियों संग्रह में आ चुकी हैं। उनकी सात हिन्दी कहानियों (बड़े घर की बेटी, सौत, सज्जनताप का दण्ड, पंच परमेश्वर, नमक का दरोगा, उपदेश और परीक्षा) का संकलन 'सप्तरोज' के नाम से 1917 में प्रकाशित हुआ।

प्रेमचन्द की कहानियों को डॉ. वासुदेव सिंह तीन चरणों में विभाजित करते हैं। प्रारम्भिक काल (1918 ई. तक) विकास काल (1918 से 1929 ई. तक), उत्कर्ष काल (1929 से 1936)। उनके अनुसार प्रारम्भिक कहानियों में घटनाओं की प्रधानता है, चरित्र–चित्रण अपेक्षाकृत कम है। द्वितीय काल की कहानियों में लेखक आदर्श मूलक भावना से प्रेरित दिखाई पड़ता है। उन्होंने अनेक प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक दोषों और विसंतियों का चित्रण करके उनका एक आदर्शमूलक समाधान खोजने की चेष्टा की है। लेकिन धीरे–धीरे जीवन के कटु अनुभावों से उनके आदर्शवाद को धक्का लगा। अतः अन्त में वे बहुत कुछ यथार्थवादी हो गए। इस तीसरे चरण में तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलनों से भी प्रभावित दिखाई पड़ते हैं।

प्रेमचन्द के कथा रचनाकाल को उपखण्डों में बांटना असंगत मानते हुए भी 1930 ई. को अस्पष्ट विभाजक रेखा के रूप में रखते हैं। उनके अनुसार इससे पूर्व की कहानियां अपने सन्दर्भों के गहरे रूप में जुड़ी रहने के बावजूद प्रभाव के दृष्टिकोण से कमज़ोर है। बहुधा प्रेमचन्द का आदर्शवादी दृष्टिकोण, परम्परागत मूल्यों, उनकी आस्था और उनका इच्छित विश्वास यहां तक कि उनका अंधविश्वास उनकी पूर्ववर्ती कहानियों पर हावी रहा। 1930 के बाद की कहानियां (कुछ कमज़ोर, कहानियों के बावजूद) नितांत भिन्न हैं। उनका तेवर पहले से बदला हुआ प्रतीत होता है। 'पूस की रात', 'ईदगाह', बड़े भाई साहब', 'ठाकुर का कुआँ', 'कफ़न' आदि में प्रेमचन्द ने सच्चाई को नग्नतम रूप में देखने का प्रयास ही नहीं किया, अपितु उसके पहलू को भी पकड़ने की चेष्टा की है जिसकी

ओर साधारणतः दृष्टि नहीं जाती। प्रेमचन्द की इस काल की कहानियां निसन्देह हिन्दी कहानी को कसौटी देने में समर्थ हो सकीं।

प्रेमचन्द को समकालीन यथार्थ की गहरी पकड़ थी। उन्होंने अपने समय के भारतीय समाज के अनेक वर्गों के पात्रों, उनके आपसी सम्बंधों, उनसे सम्बद्ध विविध समस्याओं, नवीन घटनाओं, परिस्थितियों, व्यापार और भावात्मक–चिंतातमक स्थितियों का जहां बड़ा प्रामाणिक चित्र खींचा है, वहीं इन सारी चीज़ों को प्रभावित करने वाली केन्द्रवर्ती अर्थप्रधानता को सर्वत्र रेखांकित किया है।

डॉ. रामदरश मिश्र ने प्रेमचन्द के कथा संसार की विविधताओं और जीवन्तता को रेखांकित करते हुए कहा है– 'प्रेमचन्द की अर्थमूलक दुनिया में अनेक तरह के पात्र हैं और उनके तरह की समस्याएं है। इस दुनिया में पूँजीवाद है, सरकारी अमले हैं, बहने हैं, जज हैं, जमींदार हैं, किसान हैं, मजदूर हैं, टूटते हुए रईस हैं तरह–तरह की स्त्रियाँ हैं, माताएँ हैं, बहने हैं, प्रेमिकाएं हैं, विधवाएं हैं। अपनी सम्पत्ति अपने किसी सम्बंधी को वसीयत कर दुःख भोगती वृद्धाएं हैं, पति ही सहधर्मिणी, किसान और मजदूर स्त्रियाँ हैं, निकम्मी मध्यवर्गीय रमणियां हैं, सामाजिक अन्याय से उत्पन्न वेश्याएं हैं, गर्ज़ कि प्रेमचन्द की दुनिया अन्य हिन्दी कथाकारों की दुनिया से अधिक वैविध्यपूर्ण और जीवान्त है।'

प्रेमचन्द की कहानियां घटनाश्रयी कहानियां हैं, किन्तु उसका उपजीव्य तो मनुष्य ही हैं। प्रेमचन्द अपने मानव–पात्रों को परिस्थितियों और घटनाओं की टकराहटों के बीच खड़ा कर उनके आन्तरिक रहस्यों को खोलते हैं। इसीलिए उनकी सारी कहानियों में मनोवैज्ञानिक तथ्यों का उद्‌घाटन होता चलता है, किन्तु यह मनोविज्ञान प्रायः चेतना स्वर का है।

प्रेमचन्द की कहानियों की एक बड़ी विशेषता यह है कि ये किसी खास विषय, स्थिति के अनुभव तक ही सीमित नहीं हैं, उनमें ज़िन्दगी अपनी सम्पूर्णता में, उसके रंग, रूप और छवि के साथ उजागर हुई है। यही कारण है कि उनकी कहानियों में जितने किसान हैं, उतने की ज़मींदार, मज़दूर, बाबू, भिखारी, विधवा, परित्यक्ता स्त्रियाँ, बूढ़े पुरूष भी हैं। वास्तव में प्रेमचन्द की कहानियों का मार्ग ग़रीब की झोपड़ियों से लेकर अमीरों की अट्‌टालिकाओं तक है और वे हर मोड़ पर ठोस सामाजिक यथार्थ पर खड़ी हैं।

प्रेमचन्द ने अपने कहानी के कथ्य को ही नहीं शिल्प को भी जन–जीवन से जोड़ा है।

इस युग के दूसरे महत्त्वपूर्ण कहानीकार जयशंकर प्रसाद हैं। उनके 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आँधी', 'इन्द्रजाल' नामक कहानी संग्रह हैं। अन्तर्मुखी कलाकार होने के नाते प्रसाद जी की कहानियों का सम्बंध बाह्य जगत्, सामाजिक समस्याओं या चारों ओर के वातावरण और स्थितियों से उतना नहीं जितना मानव मन के ऊहापोहों, आन्तरिक आवेगों और भावनाओं के सूक्ष्म द्वन्द्व हैं। यद्यपि कुछ कहानियों में सामाजिक विषमताओं के परिणाम, नैतिक मूल्यों का विघटन, युगीन परिस्थितियां भी चित्रित हुई हैं, लेकिन प्रधानतः उनकी कहानियां हमारे भाव जगत् की सूक्ष्म लयात्मक, काव्यात्मक अभिव्यक्ति है और उनका विषय संसार बहुत लम्बा चौड़ा नहीं है।

प्रसाद जी की कहानियों का शिल्प भी विशिष्ट है। उनकी कहानियों में कोई खास विषय वस्तु नहीं होती, न उनका प्रसार ही वहां होता है, न घटनाएं न उनका चढ़ाव न क्रमिक विकास। हर कहानी में मनोभाव या भावों का परस्पर द्वन्द्व मुख्य होता है। पूरी कहानी इसके आस–पास फैलती और समाप्त हो जाती है।

प्रेमचन्द युग के कहानीकारों में विश्वंभर नाथ शर्मा, कौशिक, सुदर्शन और ज्वाला दत्त शर्मा प्रेमचन्द संस्थान के कहानीकार हैं। कौशिक की पहली (रक्षा बन्धन) 1918 ई. में छप चुकी थी, किन्तु उनकी प्रसिद्ध कहानियां 'ताई', 'अशिक्षित हृदय', 'वह प्रतिमा' प्रेमचन्द युग की कहानियाँ हैं।

सुदर्शन (सुदर्शन सुधा, सुदर्शन सुमन, तीर्थ यात्रा, गल्प मंजरी आदि कहानी संग्रह) ने भी तत्कालीन समस्याओं को आधार बनाया।

इसी युग के उग्र (चिंगारियां, शैतान मण्डली, इन्द्र धनुष, निर्लज्जता आदि कहानी संग्रह) प्रेमचन्द की तरह सामाजिक चेतना के लेखक थे, किन्तु नग्न यथार्थवाद के कारण उन्हें प्राकृतिवाद कहा गया है। चिंगारियों में प्रखर राष्ट्रीय चेतना है जिस कारण उसे अंग्रेज़ी सरकार ने ज़ब्त कर लिया। जैनेन्द्र ने कथावस्तु को सामाजिक धरातल से समेट कर व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। 'खेल' 'अपना–अपना भाग्य', 'पाजेब', 'नीलम देश की राजकन्या' उनकी प्रसिद्ध कहानियां हैं। अज्ञेय, जैनेन्द्र की अपेक्षा अधिक बहिर्मुखी है। 'त्रिपथगा', 'सिगनेलर', 'रेल की सीटी', 'रोज', 'हरसिंगार' आदि उनकी कहानियों में आज की स्वीकृत शासन व्यवस्था तथा परम्परागत मानमूल्यों को नकारा गया। अज्ञेय की कहानियों में मनोवैज्ञानिकता है, किन्तु उसमें सामाजिक संघर्ष और विद्रोह भी है।

प्रेमचन्द युग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है आदर्श एवं यथार्थ के बीच सामंजस्य खोलने का प्रयत्न जिसे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहा गया है। हिन्दी कहानी में शुरू से ही अनमेल विवाह, दहेज, संयुक्त परिवार, वर्ग विषमता जैसे विषयों को कहानी का सरोकार बनाया गया था, प्रेमचन्द संस्थान के कहानीकार भी इन्हीं पर लिखते रहे जबकि प्रसाद संस्थान के कहानीकारों ने मानव–चरित्र के अन्तः संघर्ष की ओर मूलवृत्तियों के संघर्ष को अभिव्यक्ति दी।

प्रेमचन्दोत्तर युग :

प्रेमचन्द के बाद कहानी मुख्यतः दो धारणाओं में बंट जाती है– मनोवैज्ञानिक कहानी, सामाजवादी कहानी। इसके साथ ही कुछ ऐसी कहानियां भी लिखी गई, जो सामाजिक तो हैं, किन्तु मार्क्सवादी दृष्टि से प्रेरित नहीं हैं। साथ ही सामाजिक दृष्टि से कुछ ऐसे लेखक भी इस क्षेत्र में सक्रिय रहे जिन्होंने जैनेन्द्र, अज्ञेय की तरह मनोविज्ञान पर उतना बल नहीं दिया।

मनोवैज्ञानिक कहानी :

प्रेमचन्दोत्तर कहानी को इस पथ पर प्रेरित करने में जैनेन्द्र का महत्त्वपूर्ण योगदान है। जैनेन्द्र ने दार्शनिक मुद्रा के साथ व्यक्ति की सक्रांत मनः स्थिति को उजागर करना चाहा है, इसके लिए उन्होंने हल्का–फुल्का बाहरी परिवेश भी लिया है किन्तु मूलतः मानसिक परिवेश ही प्रधान रहा है। उनकी विशेषता यह है कि वे यही कहीं आभास नहीं देते कि वे किसी मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के सहारे आन्तरिक साहित्य की पहचान उभार रहे हैं। 'पाजेब', 'जाह्नवी', ,'एक रात', 'नीलम देश की राजकन्या', 'रत्नप्रभा', आदि इनकी उल्लेखनीय कहानियां हैं।

समाजवादी कहानी :

यशपाल, रांगेय राघव, भैरव प्रसाद गुप्त, अमृतराय, नागार्जुन, मन्मथनाथ गुप्त ने जन साधारण के शोषण को और अपनी कहानियों को विषय बनाया है। इन्होंने न केवल शोषण की तीव्र निन्दा की अपितु शोषण के उत्तरदायी कारणों को भी स्पष्ट किया है और शोषण से मुक्ति के लिए वर्ग संघर्ष की प्रेरणा दी है।

यशपाल ने मुख्यतया मध्यवर्गीय समाज के यथार्थ को अपनी कहानियों में उजागर किया। वे दिखाते हैं कि यह वर्ग विसंगतियों के जीता है, आर्थिक दृष्टि से खोखला है किन्तु उच्चवर्गीय दिखावों से ग्रस्त रहता है।

रांगेय राघव ने जीवन गहन अनुभूति के बल पर महत्त्वपूर्ण कहानियों की रचना की। उनमें शब्द विशेष उल्लेखनीय है, परन्तु उनकी कहानियों ऐसी भी हैं जिनमें बीच–बीच में भाषण की शैली में पूँजीवाद, साम्राजवाद आदि की भर्त्सना से लेकर राजनीतिक विकृतियों को समेटा गया है और किसान–मज़दूर के हितों से जोड़ने का दावा किया है।

अन्य समाजवादी कहानीकारों में अमृतराय की 'एक सांवली लड़की', 'समय', 'गीली मिट्टी' आदि कहानियां किसी–न–किसी अन्तर्विरोध या विसंगति को कुरेदती है। उनके शिल्प में कटा–छटापन और अन्तिम

बिन्दु का नियोजन मिलता है।

सामाजिक कहानियां :

प्रेमचन्दोत्तर कहानीकारों में उपेन्द्रनाथ अश्क, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार और विष्णु प्रभाकर सामाजिक कहानीकार तो हैं किन्तु समाजवादी खेमे के नहीं। उपेन्द्रनाथ अश्क समाजवादी और मनोवैज्ञानिक कहानीकारों के मिले–जुले तेवर के कहानीकार हैं उनका कथा संसार मूलतः मध्यवर्गीय जीवन–यथार्थ से निर्मित है और उसकी विसंगतियों के चित्रण में ही उनकी कला अपने उत्कर्ष पर दिखाई पड़ती है। 'डाची', 'कांगड़ा का तेली', 'आकाशचारी', 'बैंगन का पौधा' में शोषण प्रक्रिया के निरूपण के साथ–साथ शोषित वर्ग की असहायता भी उजागर हुई है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (वापसी, मास्टर साहब क. ख. ग. चौबीस घण्टे, एक सप्ताह) मूल्यों के विघटन से गुजरते हुए अन्नतः किसी सकारात्मक मानव मूल्य का अपना समर्थन देते दिखाई देते हैं। विष्णु प्रभाकर (धरती अब भी घूम रही है, गृहस्थी, रहमान की बेटी, जज का फैसला) ने अपनी कहानियों में बड़ी कलात्मकता से आज की व्यवस्था में झूठ और उसमें पिसते हुए आदमी के दर्द को उभारा है।

इस काल में भगवती चरण वर्मा (प्रायश्चित, दो बांके, मुग़लों ने सल्तनत बख्श दी), द्विजेन्द्र नाथ शर्मा निर्गुण (रस बूंद, छोटा डॉक्टर, घोड़ी, साबुन) कहानियों में मुख्यतया व्यष्टि–बोध है किन्तु सामाजिकता की पूरी तरह उपेक्षा नहीं हुई।

स्पष्ट है कि प्रेमचन्दोत्तर कहानी के दो वर्ग बन गए हैं। एक वर्ग (यशपाल, अमृतराय आदि) कहानीकार वामपंथी चिन्तन के आधार पर सामाजिक बदलाव लाने के लिए कहानी को माध्यम बनाता है तो दूसरा (विष्णु प्रभाकर, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार) वर्ग गलत मूल्यों का विरोध तो करता है, किन्तु उसमें उग्रता नहीं है।

नयी कहानी :

1950 के आसपास हिन्दी में एक नया मोड़ आता है। लगभग दस वर्षों तक चलने वाले एक आन्दोलन के रूप में इसे पहचाना गया है। नयी कहानी की पूर्ववर्ती कहानियां अपने अधिकांश रूप में फार्मूला से ग्रस्त थीं। प्रेमचन्द के फार्मूले को तोड़ने वाली मनोवैज्ञानिक कहानियों के अपने फार्मूले बन गए। प्रगतिवाद कहानियों के अपने फार्मूले थे। इसीलिए पूर्ववर्ती फार्मूले अकानी के विरोध में जिस कहानी आन्दोलन का जन्म हुआ उसे नयी कहानी कहा गया।

नयी कहानी की वैचारिकता मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद के धागों से बुनी हुई है। नयी कहानी की वास्तविक उपलब्धियां वे हैं, जहां दोनों विचारधाराओं का सन्तुलित स्वरूप मौजूद है। नयी कहानी की विशेषता यह है कि उनमें जितनी सामाजिकता है, उतनी ही व्यक्ति सत्य को लिपिबद्ध करने का आग्रह भी है। निर्मल वर्मा, राजकुमार की कहानियां कहीं–कहीं समाज निरपेक्ष हो गई हैं। इसके विपरीत अमरकान्त, मार्कण्डेय, भीष्म साहनी आदि सही मायने में प्रगतिशील कहानीकार हैं। रेणु राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी, मोहन राकेश की कहानियां व्यष्टि–समष्टि के मिले–जुले यथार्थ को उकेरती हैं।

नयी कहानी समग्र भाव से समकालीन भारतीय समाज के निरन्तर बदलते हुए रूप की पहचान कराती है। परिवार बदलाव में अर्थ की जो भूमिका है, उसको यह भी रेखांकित करती है। भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ़ की दावत', 'माँ बेटे के सम्बंधों की टूटन की सशक्त कहानी है। उषा प्रियंवदा की कहानी 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' में बेकार भाई, रोज़गार करने वाले बहन के सम्बंधों के बदलाव को अंकित किया गया है। पारिवारिक विघटन की कहानियों में उषा प्रियंवदा का 'वापसी' विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें नयी पीढ़ी की जीवन–पद्धति से सामंजस्य न बिठा पाने पर बूढ़े बाप (पुरानी पीढ़ी) को घर छोड़ना पड़ता है।

नयी कहानी में पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच अन्तराल की चर्चा करते हुए परम्परा को स्पष्ट नकारा नहीं है। वास्तव में इसका रवैया चयन और त्याग का है।

नई कहानी में सबसे अधिक संख्या प्रेम सम्बंधों पर आधारित कहानियों की है। इन प्रेम कहानियों में प्रेम रूमानी या सरल रूप में व्यंजित नहीं हुआ वरन् इनमें मनः स्थितियों या परिस्थितियों से तनाव, जटिलता, द्वन्द्व, नैतिकता और भावना की टकराहट, बदलते हुए सन्दर्भों में मानसिकता के बदलाव और समग्र रूप में एक 'ट्रेजिक प्रभाव की अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है। यथा 'परिन्दे' (निर्मल वर्मा), 'गुल की बन्नो' (धर्मवीर भारती), 'यही सच है' (मन्नू भण्डारी), 'अन्धेरे में' (निर्मल वर्मा), 'तीसरी कसम' उर्फ 'मारे गए गुलफाम' (रेणु), 'हंसा जाई अकेला' (मार्कण्डेय)।

नयी कहानी ने मुख्यतः मध्यवर्गीय जीवन के दायरे में आज़ादी के बाद मूल्य संकट और मूल्य–विघटन को लिया है। मूल्यों की टूटन के प्रति नए कहानीकार में प्रायः क्षोभ और तकलीफ का भाव है। नयी कहानी मुख्यता नगर पर केन्द्रित दिखाई देती है किन्तु आँचलिक कहानियों की बड़ी संख्या मिलती है। रेणु कहानियां इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

नयी कहानी के शिल्प की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता तथा ह्रास है। डॉ. नामवर सिंह अनुसार नयी कहानी में कथानक की धारणा ही बदल गई है। नाटकीय कौतूहलपूर्ण घटनात्मक कथानक के स्थान पर जीवन के लघु प्रसंग, विचार अथवा विशिष्ट व्यक्ति–चरित्र की कथानक बन गया है। परम्परागत संघर्ष की भावनाओं से रहित सामान्य अकिंचन क्षणों को नयी कहानी में महत्त्व मिला है। इसमें परिस्थितियों का चत्रिण न होकर मनः स्थिति का अंकन हुआ है। नयी कहानी में प्रतीक–विधान का अपना महत्त्व है। अभिव्यक्ति को अर्थगर्भित बनाने में सहायक प्रतीक सूक्ष्म होते गए हैं। ये प्रतीक कहीं–कहीं अतीव जटिल हैं, कहीं सटीक तो कहीं सतही भी हैं। नई कहानी की सांकेतिकता भी इसकी विशेषता है।

नयी कहानी की सबसे बड़ी विशेषता मध्यवर्गीय परिवार के दायरे में हो रहे मूल्य संक्रमण और मूल्य की समूची विश्वसनीयता के साथ प्रस्तुत करना है। नई कहानी की कथित अनुभूति की प्रामाणिकता इसी संदर्भ में अधिक सार्थक लगती है।

साठोत्तरी कहानी :

साठोत्तरी कहानी में कई स्वर उभरे, कई आन्दोलन सक्रिय हुए, उनमें अकहानी, सचेतन और समान्तर मुख्य हैं।

अकहानी :

विसंगति बोध या व्यर्थता बोध अकहानी का मुख्य प्रतिपाद्य है। डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित के अनुसार अकहानी का 'अ' केवल विशेषण नहीं, एक जीवन मूल्य है। इससे जीवन की आभासहीनता, व्यक्तित्व की विसंगति और अभिव्यक्ति की निरर्थकता का बोध होता है।

अकहानी के सम्बंधभाव और सम्बंधहीनता की स्थितियों की बात विस्तार से की गई है। अकहानी में पुरानी पीढ़ी को लेकर लिखी कहानियों का तेवर निर्मम है और मूड़ उग्र। अकहानी में माँ–बाप में बाद नफरत और गुस्से की अभिव्यक्ति पत्नी को लेकर हुई। इससे एक ओर दाम्पत्न जीवन में सतीत्व, पतिव्रत , एक पत्नीव्रत आदि मूल्यों को टूटते दिखाया गया तो दूसरी ओर विवाह संस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया। अकहानी में निषेध का स्वर प्रखर है। मूल्य के स्तर पर इसमें न केवल पहले के सारे मूल्यों का निषेध किया बल्कि साहित्य में मूल्य का जो अस्तित्व है, उसका भी निषेध कर दिया गया।

अकहानी विसंगति बोध, संत्रास, अकेलेपन, टूटन, मृत्यु बोध, लिजलिजेपल को आज के जीवन का यथार्थ मानकर रूपायित करती है। वह सामाजिक जीवन की संघर्ष शक्ति का मानवीय और सामाजिक मूल्य–वादिता के प्रति उदासीन नहीं, विरोधी भी है।

अकहानी कथा की विरोधी है। वह कोई कथा नहीं गढ़ती बल्कि रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के कुछ सहज घटित सन्दर्भों और संवेदनाओं को पकड़ कर प्रस्तुत कर देती है। वह कथा न कह कर विशृंखल कथाओं की एक शृंखला

प्रस्तुत करती है जो बिल्कुल जीवन की तरह होती है और जो यह मानती है कि जीवन में कुछ भी न कलात्मक के साथ शुरू होता है न समाप्त।

अकहानी के साथ जिन कहानीकारों की चर्चा होती है, उनमें रवीन्द्र कालिया, रमेश बक्षी, गंगा प्रसाद विमल, दूधनाथ सिंह और विश्वेश्वर के नाम उल्लेखनीय हैं।

डॉ. वेद प्रकाश 'अमिताभ' ने अकहानी के बारे में निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहा कि कहानीा से अकहानी का मूल्य निरपेक्ष समाज से असंपृक्त तथा यात्रा बग़ैर किसी मंज़िल के कुछ पड़ावों तक चली और एक दिन यह यात्रा खत्म हो गई। लेकिन अकहानी को यह श्रेय देना होगा कि एक ख़ास दायरे में उसने पारम्परिक नैतिक मूल्यों की अप्रासंगिकता को बलपूर्वक उद्घाटित किया।

सचेतन कहानी :

अकहानी सचेतन काहनी कालावधि की दृष्टि से थोड़े आगे पीछे के आन्दोलन हैं। सचेतन कहानी में एक ओर नयी कहानी के मैनरिज़्म का विरोध किया गया, तो दूसरी ओर कहानी की मूल्यहीनता और व्यक्तिपरकता से मुक्ति पाने की कोशिश भी की गई।

'आधार' के सचेतन कहानी विशेषांक में डॉ. महीप सिंह ने लिखा था कि यह एक दृष्टि है जिसमें जीवन जिया जाता है और जीना चाहता है। चूँकि मनुष्य की प्रवृत्ति जीवन से भागने की रही है अतः सचेतनता एक सक्रिय बोध भी है। सचेतन दृष्टि से मनुष्य को सम्पूर्णता में देखना चाहती है। वह जानती है कि व्यक्तित्व के निर्माण में उसमें अचेतन और अवचेतन अस्तित्व से लेकर सचेतन रूप तक अपनी भूमिका निभाती है।

सचेतन कहानी में परिवेश के प्रति भरपूर संलग्नता दीखती है। उनकी कहानियों में अपनी समूची बेबसी के एहसास से सचेत होकर उससे मुक्ति पाने के लिए भी सक्रिय दीखती है। उनकी कहानियों में मानवीय सम्बंधों और मूल्यों का विघटन प्रायः महानगरीय परिवेश में ही प्रस्तुत हुआ है। विघटन को दिखाते हुए यह संकेत करते हैं कि विघटित मूल्यों के माहौल में आज का व्यक्ति–गैर–रोमांटिक होकर जी रहा है। विघटन को लेकर उसमें न गुस्से का भाव है न आक्रोश का। यौन सम्बंधों को उनकी समूची गहनता और सन्दर्भ सापेक्षता के साथ उभार कर उन्हें गहन मानवीय पीड़ा और बेबसी की छटपटाहट से भी दिया है किन्तु साथ ही यह दिखाया गया है कि मनुष्य उससे मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील भी है। इन कहानियों में अकेलेपन, अजनबीपन को मूल्य के रूप में प्रस्तुत किया। यह समाज निर्पेक्ष नहीं कही जा सकती, किन्तु यह तो स्पष्ट है कि इसकी केन्द्रीय मनोभूमि मध्यवर्गीय जीवन के मूल्यांतर और मूल्य संक्रमण तक ही सीमित रही है।

सचेतन कहानकारों में महीप सिंह, योगेश गुप्त, वेद राही, राजकुमार भ्रमर, कुलभूषण सुखबीर, सुरेन्द्र अरोड़ा की गणना की जाती है।

समानान्तर कहानी :

समानान्तर : 1972 के प्रकाशन से इसका प्रारम्भ माना जाता है, बाद में सारिको के सामानान्तर विशेषांक निकले। सामानान्तर कहानी मुख्यतः आम आदमी (जिसमें निम्न मध्य वर्ग और निम्न वर्ग दोनों शामिल हैं) के अर्थ के मूलक यथार्थ को उद्घाटित करती है। इसके सीधे दो पक्ष हैं। एक पक्ष में वह उन सारी शक्तियों के उन्मूलन का स्वर घोष करती है जिसके कारण आज के समाज में आम आदमी ऐसे दमघोटू वातावरण में रहने की अभिशप्त है, जहां उसकी कम–से–कम आवश्यकताओं की पूर्ति का आधार भी लुप्त हो गया, दूसरे पक्ष में, वह आदमी के संघर्ष की अभिव्यक्ति करते हुए उन सारे कमजोर स्थलों को भी बेरहमी से चीर रही है, जिनके कारण आम आदमी के संघर्ष की पकड़ दुर्बल हो रही है।

इन कहानियों की कुछ अन्य विशेषताएं हैं :

(1) आम आदमी को लेकर लिखी गई समानान्तर कहानियों के श्रम और संदर्भ मूल्यों के रूप उभरे

हैं।

(2) पारिवारिक दायरे में श्रद्धा, सम्मान, सहानुभूति आदि के विघटन को इसने अनदेखा नहीं किया। इसके प्रति हल्की निस्संगता का रूख अपनाया गया है तो कहीं दो पीढ़ियों का वैचारिक अन्तराल उभारा गया है।

(3) काम सम्बंधों के प्रति इसने स्वस्थ दृष्टि अपनाई। यदि एक ओर शारीरिक पवित्रता को अतिरिक्त महत्त्व नहीं दिया तो दूसरी ओर अकारण सतीत्व को खंडित करने का दुस्साहस भी नहीं दिखाया गया।

जनवादी कहानी :

जनवादी कहानी का उदय सातवें दशक के अन्त में हुआ और इसका वास्तविक उभार आठवें दशक में देखने को मिला। जनवादी कहानी प्रगतिवाद का नया संस्करण या उसकी परम्परा का अगला पड़ाव कही जा सकती है, किन्तु यह मात्र मज़दूर और किसान की कहानी नहीं है, अन्य वर्ग भी इससें समाहित हैं। जनवादी कहानी का सर्वाधिक बल वर्ग संघर्ष पर है। शोषित वर्ग को अन्याय, बेईमानी और भ्रष्टता के विरोध में एक जुट होते दिखाकर यह संकेत किया है कि शोषण मुक्ति का एक मात्र कारगर तरीका संगइित जनसंघर्ष है, किन्तु इसका यह संघर्ष अहिंसक न होते हुए भी हिंसक नहीं है। इनका अधिकतर आधार राजनीतिक है। परिवारिक और काम सम्बंधों पर आश्रित जनवादी कहानियों ही मिलती हैं। साम्प्रदायिकता, धर्म के नाम पर अधर्म को प्रश्रय देने वाले मूल्यबोध का विरोध भी जनवादी कहानी में हुआ।

जनवादी कहानी में मुख्य दृष्टि विचार पर है जिससे बहुत–सी जनवादी कहानियां कला की दृष्टि से अत्यन्त कमज़ोर प्रतीत होती है।

जनवादी कहानीकारों में नमिता सिंह, श्री हर्ष, प्रदलप पांडव, सूरज पालीवाल आदि के नाम लिए जाते हैं।

पाठ संख्या : **2.3**

हिन्दी निबन्ध का उद्‌भव और विकास

2.3 हिन्दी निबन्ध का उद्‌भव और विकास :

गद्य की अन्य विधाओं की भाँति निबन्ध का सूत्रपात भी भारतेन्दु युग में हुआ। इस काल से लेकर अद्यतन काल तक के विकास को सामने रखते हुए हिन्दी–निबन्ध परम्परा को चार युगों में विभाजित कर लिया जाता है। भारतेन्दु युग, द्विवेद्वी युग, शुक्ल युग, शुक्लोत्तर युग।

भारतेन्दु युग :

भारतेन्दु युग राष्ट्रीय जागरण का काल था। इस युग का साहित्यकार देश की तत्कालीन अवस्था से विक्षुब्ध था और उसमें परिवर्तन लाने का आकांक्षी था। इस उद्देश्य से जन मानसिकता का बदलाव और सांस्कृतिक चेतना में क्रांति लाना उसे आवश्यक प्रतीत होता था। भारतेन्दु युगीन रचनाकर अपने देशवासियों को रूढ़िवादी प्रवृत्तियों और अन्ध–विश्वासों से उबार कर, पश्चिम के उन्नत निवासियों से प्रतिस्पर्धा करने के लिए प्रेरित करना चाहते थे। वे उन्हें एक ओर अपनी आलोचनाओं से लज्जित करना चाहते थे तो दूसरी ओर उनमें नव–निर्माण का उत्साह और स्फूर्ति का संचार भी करना चाहते थे। अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए यो तो उन्होंने सभी विधाओं का उपयोग किया किन्तु निबन्ध इसके लिए सर्वाधिक सक्षम सिद्ध हुआ। यही कारण है निबन्ध के क्षेत्र में भारतेन्दु को सबसे अधिक सफलता मिली।

भारतेन्दु युग के प्रायः सभी निबन्धकार किसी–न–किसी रूप में पत्र–पत्रिकाओं से सम्बद्ध थे। उस काल के मुख्य निबन्धकार थे, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्‌ट, बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमधन', लाला श्री निवास दास, राधा चरण गोस्वामी और काशीनाथ खत्री। इनमें भारतेन्दु ने 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन', प्रताप नारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण', बालकृष्ण भट्‌ट ने 'हिन्दी प्रदीप', बद्री नारायण ने 'आनन्द कादम्बिनी', श्री निवास दाय ने सदादर्श और राधा चरण गोस्वामी ने भारतेन्दु का सम्पादन किया।

भारतेन्दु युगीन निबन्ध की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है विषय और शैली का वैविध्य। पात्रों और त्यौहारों से लेकर भूकम्प, मित्रता, अपव्यय हम मूर्ति पूजक हैं, बीबी फातिमा आदि विषयों का चयन, भारतेन्दु जी ने अपने निबन्धों को धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि विषयों के व्यापक क्षेत्रों में से लिया है। भारतेन्दु युग के प्रमुख अन्य निबन्धकार बालकृष्ण भट्‌ट और प्रताप नारायण मिश्र (जिन्हें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी के स्टील और एडिसन ठहराया था) भी इस दृष्टि से पीछे नहीं हैं। प्रताप नारायण मिश्र के लिए तो कोई विशेष सीमा ही नहीं थी। सामाजिक और राजनीतिक विषयों के साथ–साथ 'दांत', 'बात का धोखा', 'क्या लिखें' जैसे गौण विषयों पर भी उनकी दृष्टि गई है। कहीं–कहीं तो ऐसा लगता है जैसे गौणता को वे एक चुनौती मान रहे हों। बालकृष्ण भट्‌ट ने बाल विवाह, कृषकों की दुरावस्था, देश सेवा का महत्त्व, महिला स्वतंत्रता जैसे विषयों पर लिखकर सामाजिक समस्याओं के प्रति अपनी जागरूकता का परिचय दिया। इनके अतिरिक्त मनोभावों और साहित्यिक विषयों पर भी उन्होंने निबन्ध लिखें। 'ईश्वर भी क्या ठठोल है', 'चली सो चली', 'नये तरह जनून के' उनके आत्माभिव्यंजक निबन्ध ा हैं। प्रेमधन के अधिकांश निबन्धों में सामाजिक विषयों पर टिप्पणी की गई है। उनके अतिरिक्त प्राकृतिक उपकरणों पर कुछ निबन्धों की रचना उन्होंने की थी। इस युग के अन्य तीन निबन्धकारों ने इन तीनों का अनुसरण ही किया। पं. सुधाकर पाण्डेय इस युग के निबंध को निम्नांकित वर्गों में विभक्त करते हैं। ऐतिहासिक रचनाएं जिनमें जाति,

व्यक्ति, पुरातत्व स्थान का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। धार्मिक रचनाओं में कर्मकाण्ड, सम्प्रदाय, साहित्य, खंडन–मुंडन, सम्प्रदाय और धर्म परिचय और प्रचारात्मक निबन्ध है। सामाजिक विषयों तथा व्यंग्य, हास्य, क़ानून, यात्रा–वर्णन, व्रत, त्यौहार सब पर निबन्ध लिखे गये। इनके विषयों में काशी से लेकर कन्नौज तक और कश्मीर से लेकर इतिहास म्यूज़ियम तक तथा माघ–स्नान विधि से लेकर जातीय संगीत तक के विषय इन लेखों की परिधियों में हैं।

पर कुल मिलाकर यह कहना ज़्यादा उचित होगा कि इनके अधिकांश निबन्ध सामाजिक विषयों पर ही लिखे गए जिसमें सुधारवादी सक्रिय प्रवृत्ति होती है। इनके अतिरिक्त चन्द्रोदय, बातचीत जैसे उच्च–कोटि के भावात्मक निबन्ध भी इस युग की विशेष देन हैं।

भारतेन्दु युग के निबन्ध वर्णनात्मक, परिचयात्मक तथा भाव प्रवण तीनों प्रकार के हैं पं. सुधाकर पाण्डेय इस युग के निबन्ध की पाँच शैलियां मानते हैं। संस्कृत बहु शैली, फ़ारसी शब्द बहु शैली, तत्सम प्रधान शैली, बोलचाल की भाषा शैली और शुद्ध हिन्दी। इस युग के निबन्धों में विषय के साथ–साथ शैली का वैविध्य भी है किन्तु इसके साथ ही इनमें कुछ ऐसे तत्त्व भी हैं, जो हिन्दी के केवल परिनिष्ठित रूप से परिचित पाठकों के लिए कठिनाई पैदा करते हैं। पूर्वी अवधी के प्रान्तीय प्रयोगों के साथ–साथ वाक्यों का गुम्फन और तात्पर्य बोध में आ गई जटिलता, इन निबन्धों का आशय जान लेने में बाधक होती है। ये दोष तीन प्रसिद्ध निबन्धकारों मिश्र, भट्ट, प्रेमधन की रचनाओं में मिलते हैं। अम्बिका दत्त व्यास और गोविन्द नारायण मिश्र के निबन्ध अनुप्रास जटिल भाषा के कारण दुर्बोध हो गए हैं। कुल मिलाकर भारतेन्दु युग की सजीव गद्य शैली कहीं पूर्वीपन से और कहीं दीर्घ वाक्य प्रणाली और संस्कृतनिष्ठता के कारण अपना स्वस्थ रूप बनाये नहीं रख सकी।

उपर्युक्त दोषों के बावजूद भारतेन्दु युग के निबन्ध अपनी सजीवता, रोचकता और आत्मीयता के कारण अपना विशिष्ट परिचय देते हैं। वास्तव में निबन्ध का जो चित्ताकर्षक, विवादपूर्ण और स्वछन्द रूप इस युग में दिखलाई पड़ा, वह परवर्ती काल में दुर्लभ ही है।

द्विवेदी युग :

द्विवेदी युग यद्यपि अपेक्षाकृत प्रौढ़ गद्य का काल है और इसमें महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाल मुकुन्द गुप्त, माधव प्रसाद मिश्र, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पद्म सिंह शर्मा और सरदार पूर्णसिंह जैसे समर्थ गद्य लेखक दिखाई पड़ते हैं परन्तु निबन्ध के क्षेत्र में उनका स्थान भारतेन्दु जैसा महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस काल में विशेष ह्रास व्यक्ति–व्यंजन निबन्धों का हुआ। लेखकों का ध्यान मुख्तया ज्ञान के विविध क्षेत्रों से सामग्री संचय की ओर ही दिखाई देता है।

द्विवेदी युग में जिन विषयों को निबन्ध में स्थान प्राप्त हुआ वे हैं इतिहास, राजनीति, अध्यात्म विज्ञान, पुरातत्व, शिल्प उद्योग, कला कौशल, भाषा साहित्य। एक दृष्टि से देखा जाए तो द्विवेद्वी युग में निबन्धों की विषय–सीमा का विस्तार हुआ और उपयोगी विषयों पर भी निबन्ध रचना हुई। द्विवेद्वी युगीन निबन्धकार का प्रमुख उद्देश्य पाठक के ज्ञान–विस्तार था रूचि परिष्कार की ओर रहा है। साहित्य में जिस तरह की सूक्ष्मता सर्जनशीलता, गहराई और अर्थ रचना की जटिलतम क्रियाएं होती हैं, वैसी द्विवेदी युगीन निबन्धों में कम से कम मिलेंगी। उनकी विशेषता जीवन की चाहे वह धर्म, राजनीति, भाषा, साहित्य या जातीय पिछड़ेपन किसी भी स्तर पर जैसा है वैसा प्रस्तुत कर देने में है। केवल साहित्य ढूंढने वाले पाठक या इतिहासकारों को द्विवेद्वी युगीन निबन्ध काफी दूर तक निराश करते हैं।

द्विवेद्वी युग में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निबन्ध राजनीतिक चेतना से सम्बन्ध रखते हैं। इनमें एक ओर अतीत का गौरव गान है तो दूसरी ओर तत्कालीन दुर्दशा का वर्णन है यथा पं. महावीर प्रसाद द्विवेद्वी का प्राचीन भारत की एक झलक, गोबिन्द काव्यतीर्थ की भारतीय पुरातन राजनीति, शिवदास गुप्त की प्राचीन शासन पद्धति और राजा। धार्मिक विषयों पर भी अनेक निबन्ध लिखे गए तथा राधाकमल का पाश्चात्य देशों की हिन्दू धर्म का सन्देश,

लक्ष्मीधर का बाइबल में वेदान्त शिक्षा आदि। राजनातिक निबन्धों में बाल मुकुन्द गुप्त के शिव शम्भु के चिट्ठे का अपना स्थान है। लेखन ने लार्ड कर्जन को सम्बोधित करते हुए उसके भारत विरोधी कारनामों पर जिस कटाक्ष व व्यंग्य पूर्ण शैली का प्रयोग किया वह हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है। सामाजिक निबन्धों में जनार्दन भट्ट का हिन्दुओं का बाल विवाह, गोपालशरण सिंह का दहेज कुप्रथा से हानियां आदि की गणना की जा सकती है। मनोवैज्ञानिक निबन्धों में पं. महावीर प्रसाद द्विवेद्वी के 'क्रोध' कामना प्रसाद के 'गुरु का शिष्टाचार' और आलोचनात्मक निबन्धों में पं. महावीर प्रसाद द्विवेद्वी के 'कवि और कविता', कृष्ण बिहारी मिश्र का 'भाषा की मधुरता का कविता पर प्रभाव' आदि उल्लेखनीय हैं।

इस काल के निबन्ध–साहित्य का उद्देश्य राष्ट्र की सम्पूर्ण समस्याओं का निपटारा और साहित्यिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक बदलाव लाना था। कुछ निबन्धकारों (सरदार पूर्ण सिंह, माधव प्रसाद मिश्र) ने ही निबन्ध के साहित्यिक अर्थ को फैलाया और निबन्ध की सर्जना में नया क्षितिज खोला। डॉ. शुकदेव सिंह के अनुसार ''यदि ये दो निबन्धकार द्विवेदी युगीन निबन्धों के इतिहास में अपनी रचनाएं नहीं जोड़ते तो द्विवेद्वी युगीन निबन्ध साहित्य विविधताओं का साहित्य विहीन संसार बनकर रह गया होता।'' सरदार पूर्णसिंह के निबन्ध 'आचरण की सभ्यता', 'मज़दूरी और प्रेम', 'काव्यदान' गद्य कौशल और साहित्य सौन्दर्य लिए हुए हैं। माधव प्रसाद मिश्र के रामलीला परीक्षा जैसे निबन्ध भी व्यक्तिनिष्ठता और साहित्यकता के सार्थक अनुपात से रचे गए हैं।

निबन्ध–साहित्य को द्विवेदी युग की सबसे बड़ी देन भाषा क्षेत्र में है। द्विवेदी जी ने सरस्वती के माध्यम से इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। वास्तव में भाषा के परिष्कार और परिमार्जन तथा विषय विस्तार दोनों दृष्टियों से ही इस काल के निबन्ध साहित्य का अधिक महत्त्व हैं।

शुक्ल युग :

शुक्ल युग अपने पूर्वग्राही युग की अपेक्षा अधिक तीव्र, उर्वर और विद्या प्रबुद्ध था। डॉ. हरिहर नाथ द्विवेदी के शब्दों में, 'शुक्ल युग के निबन्धकार एक ओर तो भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट और प्रताप नारायण मिश्र से परिचित थे, दूसरी ओर अंग्रेज़ी निबन्ध के स्वरूप, अनुभूति और स्पर्श से भी उनका योग था। इन लोगों ने निबन्धों को साहित्यिक बनाने की भरपूर चेष्टा का परिणाम यह हुआ कि इनके निबन्धों में शैली की प्रांजलता, गौण विषयों की महिमा, विषयोतरों की रोचकता तथा अपने व्यक्तित्व को सरस और उत्तेजक बनाने की साहसिकता देखने में आई।'

शुक्ल युग के निबन्धों को विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक और विवरणात्म कोटियों में रखा जा सकता है। शुक्ल जी स्वयं विचारात्मक निबन्धों को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। उन्होंने भाव और मनोविकार तथा सिद्धांतों पर निबन्धों की रचना की। इस वर्ग के निबन्धों का प्रणयन बाबू गुलाब राय, वीरेन्द्र वर्मा, पद्मलाल पुन्ना लाला बख्शी, जयशंकर प्रसाद ने भी किया। शुक्ल युग में सन्तुलित समीक्षात्मक निबंधों की रचना हुई। इस कोटि के निबन्ध शुक्ल जी के अतिक्ति नन्ददुलारे वाजपेयी, गुलाबराय, विश्वनाथप्रसाद मिश्र आदि ने लिखे। इनके अतिरिक्त छायावादी कवियों प्रसाद, पन्त, निराला ने भी आलोचनात्मक निबन्धों की रचना की। छायावाद की स्वच्छतावादी मनोभूमि पर लिखे गए इन निबन्धों में वैयक्तिक असंतोष और विद्रोह का स्वर सुनाई देता है विशेषकर निराला के निबन्धों में। भावात्मक निबन्धों में श्री वियोगी हरि, श्री कृष्णराय, डॉ. रघुवीर सिंह, महादेवी वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। इनके अलावा वर्णनात्मक (महादेवी के यात्रा वर्णन सम्बन्धी निबन्ध) तथा विवरणात्मक (श्री राम शर्मा के शिकार सम्बन्धी निबन्ध) निबन्धों की रचना भी हुई।

रामचन्द्र शुक्ल का योगदान :

शुक्ल युग के ही नहीं, समूचे निबन्ध साहित्य के अग्रणी लेखक पं. रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध साहित्य पर अलग से विचार कर लेना समीचीन होगा।

शुक्ल जी के निबन्ध चिंतामणि दो भागों में संकलित है। प्रथम भाग में तीन प्रकार के निबन्ध है मनोविकार

विषयक, साहित्यिक सिद्धांत विषयक और साहित्यलोचन विषयक। मनोविकार विषयक निबन्ध में शुक्ल जी ने उत्साह, श्रद्धा, भक्ति, करूणा, ग्लानि, लोभ, ईर्ष्या आदि भावों या मनोविकारों का स्वरूप निर्धारण तथा तुलनात्मक विवेचन किया है। इसमें शुक्ल जी के पांडित्य चित्रण, विश्लेषण अनुभव सभी का चरमात्कर्ष लक्षित होता है। डॉ. गोपाल राय का मत है कि इन निबन्धों में पर्यवेक्षण, विश्लेषण और निष्कर्ष तीनों की सुसम्बद्ध शृंखला है। फिर भी ये दर्शन शास्त्र और मनोविज्ञान की सम्पत्ति न होकर साहित्य की सम्पत्ति हैं क्योंकि इनमें गम्भीर मुद्रा त्यागकर शुक्ल जी बीच–बीच में सहज बातचीत, हास्य व्यंग्य और मधुर सम्भाषण की अनौपचारिक मुद्रा अपनाते दीखते हैं जिसके फलस्वरूप इनमें व्यक्तिगत तत्त्व का समावेश हो गया है।

शुक्ल जी ने निबन्ध में विचार को अधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार उत्तम निबन्ध वह है जिसमें नए विचार हो, एक दूसरे से गुथे हुए ताकि पाठकों की बुद्धि उत्तेजित होकर किसी नयी विचार पद्धति पर दौड़े। इसलिए उन्होंने निबन्धों में विचार के बन्धन और कसावट पर विशेष बल दिया है। स्वाभाविक रूप से उनके निबन्ध विषय प्रधान हैं। उनमें विचारों की सुगठित अभिव्यक्ति हुई है। किन्तु शुक्ल जी व्यक्तित्व की उपेक्षा करना भी उचित नहीं समझते थे। इसी को सामने रखते हुए उन्होंने चिंतामणि भाग–1 की भूमिका में कहा है– इस बात का निर्णय मैं विज्ञान पाठकों पर छोड़ता हूं कि ये निबन्ध विषय प्रधान हैं या व्यक्ति प्रधान। इसी दृष्टि के अनुसार उन्होंने विषय वस्तु का प्रतिपादन करते हुए व्यक्तित्व के सम्मिश्रण का भी पूरी तरह ध्यान रखा है। वास्तव में बुद्धि और हृदय पक्ष का जैसा संतुलन उनके निबन्धों में है वैसा अन्यत्र कम ही देखने को मिलता है।

आचार्य शुक्ल की कविता क्या है, साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद रसात्मक बोध के विविध रूप। काव्य में लोक मंगल के साधनावस्था निबन्धों में काव्य–सिद्धांत निरूपित हुए हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, तुलसी का भक्ति मार्ग, मानव धर्म भूमि ये तीन निबन्ध व्यावहारिक समीक्षा सम्बन्धी हैं। 'चिन्तामणि' के दूसरे भाग में संकलित काव्य में प्राकृतिक दृश्य, काव्य में रहस्यवाद और काव्य में अभिव्यंजनावाद आकार–प्रकार की दृष्टि से आलोचनात्मक लेख की प्रतीत होता है।

शुक्ल जी की शैली मुख्यता विचार और विवेचन की शैली है। बौद्धिक मंथन से प्रसूत उसमें निबन्ध विचार की बहुमुखी सम्भावनाएँ खोलते हैं।

शुक्लोत्तर युग :

शुक्लोत्तर युग में निबन्ध साहित्य का बहुमुखी विकास हुआ। शुक्ल जी ने आलोचनात्मक और विचारात्मक निबन्धों की जिस परम्परा की सुदृढ़ नींव रखी थी, उसका शुक्लोत्तर युग में खूब उन्नयन हुआ। आलोचनात्मक निबन्धों में हर दृष्टि से वैविध्य के दर्शन भी होते हैं। आचार्य शुक्ल के, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल जैसे प्रतिभाशाली शिष्यों ने भारतीय काव्य शास्त्र की मान्यताओं के आलोक में कवि और कृतियों का मूल्यांकन किया। यों तो नन्ददुलारे वाजपेयी भी इसी परम्परा से सम्बद्ध हैं। किन्तु उन्होंने मानव चेतना और संवदेना को आधार बनाते हुए नैतिकता की अपेक्षा सौंदर्य बोध को अधिक महत्त्व दिया। इसी कारण उन्हें सौंदर्य वादी आलोचक कहा जाता है। डॉ. नगेन्द्र रसवाद में अटूट आस्था रखने वाले समीक्षक हैं। इसके साथ ही पाश्चात्य काव्यशास्त्र और मनोविज्ञान के अपने अध्ययन का उपयोग करते हुए उन्होंने अपने व्यक्तित्व की छाप से भी मंडित किया है। आलोचनात्मक निबन्धों में विशेषकर सैद्धांतिक समीक्षा से जुड़े हुए निबन्धों की रचना में बाबू गुलाब राय का योगदान भी उल्लेखनीय है। पंडित शान्तिप्रिय द्विवेदी प्रभाववादी आलोचनात्मक निबन्ध परम्परा के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर थे। इनके अलावा हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के समीक्षात्मक निबन्ध भी महत्त्वपूर्ण हैं। काव्य शास्त्रीय चिंतन की तुलना में मानवतावाद दृष्टि को उनके निबन्धों में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। इसके बाद ही पुराण, धर्म, दर्शन सम्बन्धी अपने ज्ञान को भी सरलता से निबन्धों से समन्वित करने चले जाते हैं। मार्क्सवादी दृष्टि से साहित्य

का अनुशीलन करने वाले अनेक लेखक भी शुक्लोत्तर युग से सक्रिय रहे। इनमें डॉ. राम विलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, यशपाल, प्रकाश चन्द गुप्त, अमृतराय और नामवर सिंह उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त समीक्षात्मक निबन्धकारों में डॉ. सत्येन्द्र, देवराज उपाध्याय, विजेन्द्र स्नातक, इन्द्र नाथ मदान, बच्चन सिंह, भगीरथ मिश्र, रघुवंश, देवेन्द्र शर्मा, राम स्वरूप चतुर्वेदी, नेमिचन्द्र जैन उल्लेखनीय हैं।

संस्करणात्मक निबन्धों की सुदृढ़ धारा भी शुक्लोत्तर युग में प्रवाहित हुई। इस वर्ग के लेखकों में रामवृक्ष बेनीपुरी, महन्त आनन्द कोसत्यायन, महादेवी वर्मा का नाम उल्लेखनीय है।

हास्य व्यंग्य विनोद की दिशा में इस युग का योगदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। हरि शंकर परसाई, ठाकुर प्रसाद सिंह, श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी, इन्द्रनाथ मदान, लक्ष्मीकांत वर्मा, प्रभावकर माचवे, संसार चन्द्र, रविन्द्र नाथ त्यागी, केशव चन्द्र वर्मा, नरेन्द्र कोहली इत्यादि।

2.3.1 हिन्दी नाटक का विकास :

प्रारम्भ :

भारतेन्दु को हिन्दी नाटक का जनक माना जाता है। उनसे पूर्व कुछ ऐसी रचनाओं का उल्लेख मिलता है जो नाटक नाम से अभिहित की जाती है। इन रचनाओं में विद्यापति कृत 'रूकमणि हरण' और 'पारिजात हरण', 'रामायण महानाटक' (1910 ई.), हृदयराम कृत 'हनुमन्नाटक' (1923 ई.), बनारसी दास कृत 'समयसार' (1939 ई.), केशव दास कृत 'विज्ञान गीता', यशवंत सिंह कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' देवकृत 'देवमाया प्रपंच', कृष्ण जीवन कृत 'करूणाभरण', 'रघुराम कृत 'सभासार', ब्रजवासी कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' आदि का उल्लेख किया है। किन्तु साथ ही यह भी कहा है कि इनकी रचना काव्य की भाँति है। अर्थात् नाटक रीत्यानुसार पात्र प्रवेश इत्यादि कुछ नहीं है। वास्तव में ये रचनाएं या तो अनुवाद है या रामायण और महाभारत की कथाओं का पद्यात्मक वर्णन। इनमें उपलब्ध संवादात्कता, संकेत वाक्य और प्रबन्धात्मकता काव्य शैली मात्र है और हिन्दी के किसी भी प्रबन्ध काव्य में देखी जा सकती है। इनमें मात्र प्रवेश गद्य का प्रयोग नहीं हैं, न नाट्याभिनय का स्थान है और न चरित्र–चित्रण और कार्य व्यापार ही। भारतेन्दु ने देव के 'देवमाया प्रपंच' और महाराजा विश्वनाथ सिंह के आनन्द रघुनन्द को नाटक की कोटि में इसलिए रखना उचित नहीं समझा क्योंकि नाटकीय रीति से निर्मित होने के बावजूद इनमें नाटकीय नियमों का प्रतिपालन नहीं हुआ और ये छन्दप्रधान है। किन्तु कुछ विद्वान् भारतेन्दु जी के तर्कों का निराकरण करते हुए 'आनन्द रघुनन्द को हिन्दी का प्रथम नाटक, उनके पिता कविवर गिरिधर दास (वास्तविक नाम बाबा गोपाल चन्द्र) का लिखा 'नहुष' को दूसरा और राजा लक्ष्मण सिंह के 'शकुन्तला' नाटक को हिन्दी का तीसरा नाटक ठहराते हैं।

भारतेन्दु युग :

उक्त नाटकों से हिन्दी नाटकों की कोई परम्परा नहीं बनी। इसलिए हिन्दी नाटक के शिलान्यास का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को ही दिया जाना चाहिए।

भारतेन्दु युग के नाटक को इन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक, प्रेमनाटक, प्रहसन, अनुवाद।

पौराणिक नाटकों की धारा इस युग की सर्वाधिक समृद्ध धारा है। पौराणिक कथावस्तु को आधार बनाते हुए भी नाटककारों ने नाटक की वस्तु में अलौकिक घटनाओं को स्थान दिया। इसके साथ–साथ पात्र भी मानवीय आधार पर प्रतिष्ठित हुए हैं। कृष्ण कथा से सम्बद्ध नाटकों में प्रेम और श्रृंगार के साथ–साथ रक्षण एवं उद्धार को भी स्थान मिला। कुछ विद्वानों ने इसका प्रारम्भ भारतेन्दु 'चन्द्रावली' (1876) नाटक से माना है। किन्तु उससे पहले शिवनन्दन सहाय का 'कृष्ण सुदामा' (1870) नाटक की रचना हो चुकी थी। इस विषय के कुछ अन्य नाटक हैं।

देवकीनंदन त्रिपाठी कृत 'रूक्मिणी हरण', 'कंस वध' और 'नन्दोत्सव', अम्बिका दत्त व्यास का 'ललित नाटक', हरिदत्त दुबे कृत 'उदाहरण', बालाकृष्ण भट्ट कृत 'शिशुपाल वध', राधाचरण गोस्वामी कृत 'श्रीदास', 'शिवनन्दन सहाय कृत 'सुदामा' आदि। इन नाटकों में मुख्यतः 'कंस वध', 'रूक्मिणी हरण', 'द्रौपदी चीर हरण', 'सुदामा कृष्ण मिलन' प्रसंगों को आधार बनाया गया। कृष्ण की रासलीला के अतिरिक्त उनके द्वारा भक्तों की सहायता और दुष्ट संहार का चित्रण करने में ही नाटककारी की विशेष रूचि प्रतीत होती है।

राम कथा से जुड़े हुए नाटकों में राम का लोकरक्षक रूप ही अधिक अंकित हुआ है। ये नाटक रामलीला को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं।

महाभारत और अन्य पौराणिक उपाख्यानों को लेकर भी बहुत से नाटक लिखे गए। इन नाटकों में हरिश्चन्द्र, अर्जुन, प्रह्लाद, ध्रुव, राजा नल, अभिमन्यु, कर्ण पर ही नाटककारों का अधिक ध्यान गया। सावित्री, अंजना, सुलोचना जैसी पतिव्रता स्त्रियों ने भी इनका ध्यान आकर्षित किया। इनमें कुछ उल्लेखनीय नाटक ये हैं– भारतेन्दु कृत 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'सती प्रताप', 'बालकृष्ण भट्ट का 'दमयन्ती स्वयंवर', सुदर्शनाचार्य का 'नल चरित्र'।

ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा की शुरूआत बालकृष्ण भट्ट 'चन्द्रसेन' और भारतेन्दु कृत 'नील देवी' (1880 ई.) हुई। नील देवी के साहसी और व्यवहार कुशल व्यक्तित्व के चित्रण में भारतेन्दु को विशेष सफलता मिली।

राजनीतिक नाटक राजनीतिक नाटकों का प्रवर्त्तन भारतेन्दु के नाटक, 'भारत दुर्दशा' से हुआ।

सामाजिक नाटक :

हिन्दु समाज की रूढ़ियों व संस्कारों का यथार्थ अंकन भी तत्कालीन नाटकों में हुआ। बाल–विवाह, अनमेल विवाह, छुआछात, जन्म–पत्री मिलान आदि पर नाटककारों का विशेष ध्यान गया। धर्म की आड़ में मांस खाने वालों की खिल्ली भारतेन्दु ने 'वैदिकी हिंसा हिसां न भवति' में उड़ाई। 'प्रेम जोगिनी' में उन्होंने धार्मिक पाखण्डों और मिथ्याचारों पर चोट की। भारतेन्दु युग में बाल विवाह और देवदत्त शर्मा ने 'बाल विवाह दूषक' आदि में व्यंग्य प्रहार किया।

प्रेम नाटक : भारतेन्दु युग में प्रेम नाटक भी लिखे गए किन्तु ये संख्या में कम हैं। इसके साथ में एकान्त प्रेम का चित्रण नहीं हुआ। कोई न कोई सामाजिक समस्या भी नाटककार के सम्मुख रही हैं। सुखान्त प्रेम नाटकों में भारतेन्दु कृत 'विद्या सुन्दर' और दुखान्त में श्रीनिवास दास कृत 'रणधीर प्रेम मोहनी' उल्लेखीय हैं।

प्रहसन : इसें वस्तु, सन्धि, संध्यंग और लास्य भाषा के समान होता है। हास्य रस की प्रधानता रहती है। इसमें एक अंक होता है। साहित्यदर्पणकार में संकीर्ण प्रहसन में दो अंकों का होना बतलाया है।

अनुवाद : भारतेन्दु युग में अनुवाद भी खूब हुए। संस्कृत और बंगला से विशेष रूप से और अंग्रेज़ी से सामान्य रूप से यह कार्य हुआ। भारतेन्दु का 'मुद्रा राक्षस' सबसे उत्कृष्ट अनुवाद था और मौलिकता का आभास देता था।

इनके अतिरिक्त विरूद्ध रंगमंचीय नाटक भी काफी लिखे गए। ये तीन प्रकार के हैं– कृष्ण एवं रास लीला नाटक और पारसी शैली के नाटक। इनमें पारसी नाटक जनता में बहुत लोकप्रिय थे। इनकी भाषा आमतौर पर उर्दू थी। हिन्दी नाटक लिखते हुए भी उर्दू का मिश्रण रहता था।

शिल्प–विधान की दृष्टि से भारतेन्दु युग के नाटक किसी निश्चित नियम को नहीं अपनाते। प्राचीन, नवीन और मिश्रित तीनों का उपयोग उस काल के नाटकों के शिल्प विधान में देखा जा सकता है। यही नहीं, तत्कालीन रासलीला, रामलीला, स्वांग, पारसी थियेटरों के वातावरण का प्रभाव प्रायः सभी रचनाओं पर पाया जाता है,

परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप कई परिवर्तन हुए।

द्विवेदी युग :

नाटकों की संख्या की दृष्टि से द्विवेदी युग पर्याप्त समृद्ध है किन्तु गुणवत्ता की दृष्टि से इस काल की नाट्य रचना का अधिक महत्त्व नहीं दिखता। वास्तव में भारतेन्दु और प्रसाद के बीच के युग में बद्रीनाथ भट्ट के अलावा कई समर्थ नाटककार दिखाई नहीं पड़ता। स्वयं बद्रीनाथ भट्ट भी पारसी कम्पनियों के प्रभाव से अछूते दिखाई नहीं देते।

द्विवेदी युग का नाटक उस काल की अन्य विधाओं की भांति राष्ट्रीयता की भावना से अनुप्राणित है। उसमें विदेशी शासन के प्रति विरोध और देश की हीनता के निरूपण की प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है। इसके साथ ही सनातन धर्म और आर्य समाज के द्वन्द्व का स्वर भी प्रबल है। इस काल के नाटकों में भारतेन्दु युगीन ज़िन्दादिली और हास्य व्यंग्य का अभाव नहीं, पराधीनता की पीड़ा की वैसी मार्मिक अभिव्यक्ति भी नहीं मिलती।

द्विवेदी युग के नाटक को मुख्यतया पौराणिक, ऐतिहासिक, रोमाचकारी, प्रहसन और अनुदित श्रेणियां विभाजित किया जा सकता है। पौराणिक नाटकों में राधाचरण गोस्वामी कृत 'श्रीदास', ब्रजनन्दन सहाय कृत 'उद्धव' नारायण मिश्र कृत 'कंस वध' आदि कृष्ण कथा पर आधारित हैं, जबकि नारायण सहायक कृत 'रामलीला', गिरधर लाल कृत 'रामदन यात्रा' तथा गंगा प्रसाद कृत 'रामाभिषेक' आदि रामकथा से सम्बद्ध है। इसी वर्ग में महावीर सिंह का 'नल दमयन्ती', हनुमंत सिंह का 'सती चरित्र', बद्रीनाथ भट्ट का 'कुरवन दहन', माखन लाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन युद्ध' पौराणिक पात्रों से सम्बद्ध नाटक हैं। इन नाटकों में र्स्वत्र उपदेश की प्रवृत्ति मिलती है।

ऐतिहासिक नाटकों में गंगा प्रसाद गुप्त का 'वीर जयमल', वृंदावन लाल वर्मा का 'सेनपति ऊदल,' बद्रीनाथ भट्ट का 'चन्द्रगुप्त' आदि उल्लेखनीय हैं इन नाटकों में इतिहास तत्त्व की रक्षा प्रायः नहीं हुई।

सामाजिक नाटकों में भगवती प्रसाद कृत 'वृद्ध विवाह', कृषणानन्द जोशी कृत 'उन्नति कहां से होगी' और मिश्रबंधु कृत 'नेत्रोन्मीलन' उल्लेखनीय हैं। सामाजिक और राजनीतिक विकृतियां उखाड़ कर, समाज सुधार करना ही इनका लक्ष्य था। नाट्य शिल्प की दृष्टि से ये विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

इस काल में कुछ स्वतन्त्र प्रहसनों की रचना भी हुई। यहां बद्रीनाथ भट्ट का 'चुंगी की उम्मीदवारी', गंगा प्रसाद श्रीवास्तव की 'नोक–झोंक।

इनके अलावा संस्कृत, अंग्रेज़ी और बंगला से लाला सीताराम गंगा प्रसाद श्रीवास्तव और ब्रजनन्दन सहाय ने नाटकों का अनुवाद किया। प्रायः सभी नाटकों में मूल नाटकों की आत्मा सुरक्षित नहीं रह सकी।

प्रसाद युग :

प्रसाद युग हिन्दी नाटक का स्वर्ण युग है। प्रसाद जी के आगमन से हिन्दी नाटक में नवीन युग का सूत्रपात हुआ। इस काल में मुख्यतया ऐतिहासिक व पौराणिक नाटकों की रचना हुई। इससे भी ऐतिहासिक नाटकों की ओर अपेक्षाकृत अधिक झुकाव रहा। प्रसाद जी के 'अजातशत्रु', 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त मौर्य', ध्रुवस्वामिनी के अतिरिक्त सुदर्शन का 'दयानन्द', बलदेव प्रसाद मिश्र का 'मीराबाई', उग्र का 'महात्मा ईसा', प्रेमचन्द का 'कर्बला', बद्रीनाथ भट्ट का 'दुर्गावती' उदयशंकर भट्ट का 'चन्द्रगुप्त मौर्य', सेठ गोबिन्ददास का 'हर्ष', मिलिन्द कृत 'प्रताप प्रतिज्ञा' इसी युग की देन हैं। ऐतिहासिक नाटक जहां प्रसाद जी के हाथों चरमोत्कर्ष पर पहुंचे वहां शेष ने प्रायः सामान्य कोटि की रचनाएं कीं। प्रसाद जी ने भारत के उज्जवल अतीत का ही चित्रण किया। उसके माध्यम से युगीन समस्याओं पर प्रकाश डाला। अन्य नाटककारों में बद्रीनाथ भट्ट, सेठ गोबिन्ददास और उदयशंकर भट्ट ने भी इस विधा को प्रधान साहित्यिक माना, शेष ने तो लगे हाथों इस पर लेखनी आजमाई जिससे उनका स्तर ऊंचा नहीं

है।

पौराणिक नाटकों में मैथिलीशरण गुप्त का 'तिलोत्तमा', चन्द्रदास का 'अनघ', बद्रीनाथ भट्ट का 'बेन चरित्र', मिश्रबंधु का 'पूर्व चरित्र' और 'उत्तर भारत' और गोबिन्द वल्लभ पंत कृत 'बरमाला', किशोरी दास वाजपेयी कृत 'सुदामा', सेठ गोबिन्द दास कृत 'कर्त्तव्य' तथा जगन्नाथ शरद के कुरूक्षेत्र की गणना की जा सकती है।

इसी काल में लक्ष्मी नारायण मिश्र के 'संन्सायी', राक्षस का मन्दिर', 'मुक्ति का रहस्य' प्रकाशित हुए। मिश्र जी का 'संन्यासी' तो उसी वर्ष प्रकाशित हुआ जिस वर्ष प्रसाद जी का 'स्कन्दगुप्त' निकला था। उसकी विषय वस्तु ऐतिहासिक नहीं, आधुनिक शिक्षा और उसके कारण रोमांटिक प्रेम की बुराइयों से सम्बन्धित है। मिश्र जी के नाटक समस्या नाटक कहलाते हैं, जिनमें बदलते हुए भारतीय समाज में स्त्री पुरूष सम्बन्धों की पड़ताल की गई है।

प्रसाद युग के नाटककारों का मुख्य ध्यान राष्ट्रीय और सामाजिक आवश्यकताओं की ओर था। वास्तव में अपनी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए इतिहास और पुराण का माध्यम बनाया गया। जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' और 'स्कन्दगुप्त' के संघर्षरत महान् व्यक्तित्व परतन्त्रता की बेड़िया तोड़ने के लिए प्रेरित करते हैं।

प्रसाद युग में प्रहसनों की भी रचना हुई। जिनमें व्यक्तिगत और सामाजिक विसंगतियों पर प्रकाश डाला गया। उल्लेखनीय प्रहसनों में बद्रीनाथ भट्ट की 'मिस अमेरिका', 'विवाह विज्ञापन', सुदर्शन का 'आनरेरी मैजिस्ट्रेट आदि हैं।

प्रसाद युग में हिन्दी नाटक के शिल्प में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। प्रसाद की के नाटकों की अभिनेयता पर पहले ही प्रश्न चिन्ह लगाया गया किन्तु कुल मिलाकर इस युग में अभिनेयता के प्रति नाटककार जागरूक दिखाई देते हैं। इन नाटकों में कार्य–व्यापार की महत्त्व का प्रमाण हैं। रंगमंच और साहित्य का मेल करवाने की रूचि इस काल की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

जयशंकर प्रसाद का योगदान :

हिन्दी नाटक के विकास में भारतेन्दु के बाद जो ठहराव आ गया था, उसे तोड़कर फिर से उसके प्रवाह को गतिशील बनाने की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनके आरम्भिक पांच नाटक (सज्जन, कल्याणी परिणय, करूणालय, प्रायश्चित और राज्यश्री) द्विवेदी युग में लिखे गये थे।

प्रसाद मुख्यतया ऐतिहासिक नाटककार के रूप में प्रसिद्ध है। 'विशाखा', 'अजातशत्रु', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'राजयश्री', 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' इनके सात ऐतिहासिक नाटक हैं। उनके नाटकों में भारतीय अतीत की गौरवपूर्ण झांकी प्रस्तुत हुई है। डॉ. बच्चन सिंह की राय में प्रसाद जी का इतिहास की परिवर्तनशील में अटूट विश्वास था।

प्रसाद जी ने नाटकों में अपने युग की समस्याएं भी प्रतिबिम्बित की हैं। एक धरातल पर तो उनको अतीत के पद पर वर्तमान के चित्र तक ठहराया जा सकता है। समसामयिकता और राष्ट्रीयता को उनके नाटकों में विशेष महत्त्व मिला है। उनके नायक विदेशी आक्रमणकारियों को बार–बार पदमर्दित करते हैं। प्रसाद जी की राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में डॉ. बच्चन सिंह ने दो महत्त्वपूर्ण बातों की ओर संकेत दिया है। एक इनकी राष्ट्रीयता राजाओं, सरदारों तक ही सीमित नहीं है। वह ऐसी राष्ट्रव्यापी चेतना है जो देश के प्रत्येक व्यक्ति को अपने में समाहित कर लेती है। दूसरी, इनकी राष्ट्रीयता में विश्व मैत्री समन्वित है।

प्रसाद जी की विशेष सफलता नारी पात्रों की परिकल्पना में दिखाई पड़ती है। उनकी कुछ नारियां महत्वकाक्षिणी हैं, जो अपनी लक्ष्य–सिद्धि के लिए उचित अनुचित में भेद नहीं करती (अजातशत्रु की छलना) दूसरे वर्ग में एकान्तवासिनी प्रेमिकाएं हैं जिनके लिए जीवन और जगत् में एक राग है, जिसमें ये बेसुध रहती हैं। इसमें विशेषता यह है कि पूर्णतया आत्मसमर्पण के बावजूद इनका स्वतंत्र व्यक्तित्व कुंठित नहीं होता। देवसेना (स्कन्दगुप्त), मल्लिका (अजातशत्रु) मालविका (चन्द्रगुप्त), तीसरे वर्ग में वे स्त्रियां आती हैं, जो अनुभवी, समझदार

और कर्त्तव्यनिष्ठ हैं, तथा जिन्हें चाहे– अनचाहे राजनीति में भाग लेना पड़ता है यथा चन्द्रगुप्त की अलका, स्कन्दगुप्त की कमला।

प्रसाद जी के नाटकों में कथोपकथनों का बड़ा कुशल उपयोग हुआ है। रोमानी भाव बोध के कलाकार होने के नाते उनके संवादों की संवेगात्मकता का सन्निवेश विशेष रूप से हुआ। व्यंग्य का उनके नाटकों के संवादों में एकान्त अभाव नहीं है।

वस्तु योजना, नायक परिकल्पना और रस दृष्टि का आधार संस्कृत नाटक है, तो कथावस्तु में संघर्ष का समायोजन, अंकों को दृश्यों में विभाजन आदि में वे शेक्सपियर के नाटकों के निकट प्रतीत होते हैं। वास्तव में प्रसाद जी ने सभी का आधार ग्रहण कर अपने लिए उपर्युक्त शिल्प–विधान का निर्माण किया। इसके बावजूद अभिनेयता की दृष्टि से उनके नाटक दोषपूर्ण माने जाते हैं। घटना विस्तार, लम्बे दार्शनिक भाषा के दुरूहता, स्वगत कथनों की अस्वाभाविकता अंकों के दृश्य विभाजन में जो पृच्छवत नियम के पालन का अभाव, एक दृश्य के बाद व्यापक, परिवर्तन के आवश्यकता वाले दूसरे दृश्यों का नियोजन, युद्ध अभियान सम्बन्धी दृश्यों का प्रवेश, संकलनत्रय की उपेक्षा के कारण उनका अभिनय कठिन हो गया है। प्रसाद जी को इसकी जानकारी थी इसी कारण उन्होंने नाटक के उपयुक्त रंगमंच के निर्माण की ज़रूरत पर बल दिया था।

प्रसाद जी के नाटक अपने विशिष्ट अन्त के लिए भी उल्लेखनीय हैं। वे न तो दुःखान्त है और न सुखान्त। प्रत्यक्ष रूप से सुखान्त होते हुए भी अवसाद अन्तः सलिला उनमें व्याप्त मिलती है, इसलिए उन्हें प्रसादान्त कहा गया।

प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक :

प्रसाद युग के बाद हिन्दी को रंगमंच के अभाव की समस्या का सामना करना पड़ा। अव्यवसायी रंगमंच का शुरू से ही अस्तित्व नहीं था, प्रसादोत्तर युग में व्यवसायी (पारसी) रंगमंच भी विघटित हो गया। अब नाटक या तो पाठ्य रह गये, या स्कूल या कॉलेज में खेले जेने तक सीमित हो गए। बौद्धिकता के प्रति आग्रह के कारण शेक्सपियर के नाटकों का प्रभाव तो कम होता गया। इब्सन, बर्नाड शॉ जैसे यथार्थवादी नाटक का प्रभाव भी सतही रहा, यथार्थवादी रंगमंच के अभाव के कारण यथार्थवादी नाटकों को विशेष सफलता नहीं मिली।

सामाजिक नाटक :

प्रसादोत्तर काल के सामाजिक नाटककारों में उपेन्द्रनाथ अश्क महत्वपूर्ण हैं। अश्क जी में यथार्थवादी रगमंच की चेतना सुस्पष्ट है। उनके नाटकों में स्त्री–जीवन की अनेक समस्याओं को भी बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया गया। 'स्वर्ग की झलक', 'छठा–बेटा', 'अंजो दीदी' आदि उनके प्रसिद्ध नाटक हैं।

सेठ गोबिन्द दास के 'प्रेम या पाप', 'दुःख क्या', 'बड़ा पापी कौन?' सामाजिक नाटक हैं। सेठ गोबिन्द दास सामाजिकता व नैतिकता में आस्था रखने वाले आदर्शवादी नाटककार हैं। वृन्दावन लाल वर्मा ने 'राखी की लाज', 'फूलों की बोली', 'लो भाई पंचो लो' जैसे सामाजिक नाटक लिखे किन्तु उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। वास्तव में वे संवाद के उपन्यास ही प्रतीत होते हैं।

इसके अलावा पृथ्वीराज शर्मा, भगवती वल्लभ वाजपेयी, गोबिन्द वल्लभ पंत आदि ने भी सामाजिक नाटक लिखे।

पौराणिक नाटक :

नाटकों में राम, कृष्ण और महाभारत ये तीन विषय ही लोकप्रिय हुए। देवराज दिनेश (रावण नाटक), उदयशंकर भट्ट (विश्वमित्र), चतुरसेन शास्त्री (राधा कृष्ण), उग्र (गंगा का बेटा), लक्ष्मीनारायण मिश्र (नारद की वीणा, चक्रव्यूह), गोविन्द वल्लभ पंत (ययाति), हरिकृष्ण प्रेमी (पाताल विजय) आदि ने इस वर्ग के नाटकों की रचना की है।

राजनीतिक नाटक :

राजनीतिक नाटककारों में सेठ गोबिन्द दास विशेष उल्लेखनीय हैं। सिद्धान्त, स्वातन्त्र, हिंसा या अहिंसा विकास, पाकिस्तान आदि उनके राजनीतिक नाटक हैं। उनके नाटकों पर गांधीवादी दर्शन हावी हैं।

ऐतिहासिक नाटक :

ऐतिहासिक नाटककारों में हरिकृष्ण प्रेमी, सेठ गोबिन्द दास, लक्ष्मी नारायण मिश्र और वृन्दावन लाल वर्मा उल्लेखनीय हैं। प्रेमी जी ने मुस्लिम काल को लेकर अपने नाटकों में हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रतिपादन किया है। 'बंधन', 'आहुति', 'स्वपन भंग', 'विषपान', आदि नाटकों की यही मूल चेतना है। इसके साथ ही उन्होंने छूतछात और क्षत्रियों के मिथ्या अभिमान पर भी चोट ही है। प्रेमी जी की शैली भावात्मक और कवित्वपूर्ण है। लक्ष्मीनाराण मिश्र ने 'अशोक', 'गरुड़ध्वज' आदि नाटकों में भारतीय संस्कृति का आख्यान किया है। सेठ गोबिन्द दास के कुलीनता शशिगुप्त आदि नाटकों में देश प्रेम और गांधीवादी मान्यताएं प्रतिबिम्बित हुई हैं। वर्मा जी ने ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्त्व की रक्षा का प्रयत्न विशेष रूप से आकृष्ट करता है।

स्वाधीनता के बाद हिन्दी नाटक से परिवर्तन का आभाव होता है। उपेन्द्रनाथ अश्क, रामकुमार वर्मा और जगदीशचन्द्र माथुर की नाट्य रचनाओं में हिन्दी नाटक और रंगमंच को एक स्वरूप रिश्ते में बाँधने की शुरूआत की। अश्क पहले नाटककार हैं जिन्होंने हिन्दी नाटक को रोमांच की चौहद्दी से बाहर निकाल कर उसे आधुनिक भाव बोध से जोड़ा। उनकी स्वातंत्र्योत्तर कृति 'अंजो दीदी' एक प्रौढ़ रचना है।

अश्क के बाद जगदीश चन्द्र माथुर का कार्य उल्लेखनीय है। 'कोणार्क', 'शारदीया', 'पहला राजा', 'दशरथ' उनके चर्चित नाटक हैं।

मोहन राकेश का योगदान :

राकेश के पहले नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' से हिन्दी नाटक के व्यस्क होने की नई दिशा ग्रहण करने की सूचना मिली है। उन्होंने कालिदास के इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तित्व को अपने नाटक का विषय तो बनाया किन्तु कथा कल्पित ही रखी। यही नहीं, अन्य अनेक परम्परागत तत्त्वों को भी बिल्कुल नये रूप में प्रस्तुत किया।

'आषाढ़ का एक दिन' की कथावस्तु कालिदास के जीवन से सम्बन्धित है, किन्तु मूलतः वह कालिदास की प्रेयसी मल्लिका का नाटक होकर रह गया है। कालिदास की आत्मकेन्द्रीयता और मल्लिका की अनन्यता ही नाटकीय स्थितियों को जन्म देती है। इसके साथ ही राकेश ने अपने युग को इतिहास से जोड़ा है जिससे इतिहास मिथक बन कर रहा गया है। नेमिचन्द्र जैन की दृष्टि में 'आषाढ़ का एक दिन' हिन्दी का पहला यथार्थवादी नाटक है जो बाह्य और आन्तरिक यथार्थ को उनकी समन्विति में उनके अन्तर्द्वन्द्व में देखता और प्रस्तुत करता है। उसमें कार्य–व्यापार के संयोजन में गति पर्याप्त तीव्र ही नहीं है उसमें तीव्रता के भीतर विविधता भी है, विभिन्न भावों और स्थितियों को, विभिन्न पात्रों को इस प्रकार आमने सामने रखा गया है कि अपने आप में नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करते है अैर परवर्ती परिणति को भी यथासम्भव अनिवार्य और विश्वसनीय बनाते हैं।

राकेश के दूसरा नाटक 'लहरों' के राजहंस का कथानक अश्वघोष के सहोदर नन्द पर आधारित है। नन्द और सुन्दरी की कथा का आश्रय राकेश की आधुनिक व्यक्ति की दुविधा विदीर्ण मानसिकता के नाटकीय चित्रण के साथ स्त्री पुरूष की सामान्य नियति की तलाश का गम्भीर रेखांकन किया है। यह नाटक स्पष्ट करता है कि मनुष्य को अपनी मुक्ति का मार्ग स्वयं ही रचना पड़ता है। वस्तु, सरंचना और शिल्प की दृष्टि से एक दृश्य बंधीय नाटक की कठिनाईयों का राकेश को अहसास था, इसलिए उन्होंने रंगमंच पर पात्रों को बराबर बदलते रहकर तथा स्थितियों को परस्पर जोड़ा है। इसके साथ ही एक बात को प्रतीक, बिम्ब, संकेत द्वारा दोहरा, तिहरा कर भी प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक की एक मुख्य विशेषता है, संवाद जिसे सभी नाट्य समीक्षकों ने हिन्दी नाटक की उपलब्धि माना है। इस नाटक में अनेक कमियां भी हैं। इस प्रतीक बहुत नाटक में बहुत से प्रतीक ऐसे

भी हैं, जो तर्कसंगत और निभ्रांत प्रतीत नहीं होते। इसके साथ ही इसका तीसरा अंक अति दुर्बल है और पूर्ण तीव्रता के साथ अभिव्यंजित नहीं होता।

राकेश के इन दोनों नाटक के बारे में रस्तोगी के ये शब्द उल्लेखनीय हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' के समकालीन प्रश्न, आधुनिक मानव के अन्तर्द्वन्द्व का जटिल स्तरों पर चित्रण सम्प्रेषण, स्त्री पुरूष सम्बन्धों का द्वन्द्व, विरोधी स्थितियों की बनावट से नाटकीय निर्वाह का सौन्दर्य और पहली बार संस्कृतिनिष्ठ काव्यमय, क्लासिक युग के अनुरूप लेकिन रंगमंच की जटिलता के लिए नाट्य का प्रयोग, दृश्य–बिम्बों, संकेतों का उपयोग हिन्दी नाटक को सहसा बहुत विकसित करता है।

'आधे अधूरे' में राकेश इतिहास के आधार को छोड़कर सीधे समाज की विसंगतियों से जूझते हैं। यह नाटक मध्यवर्गीय आदमी की तस्वीर है जो परिस्थितियों से टकराने के बाद अन्ततः उन्हें झेलने पर विवश हो जाता है।

राकेश के अतिरिक्त इस युग के अन्य महत्त्वपूर्ण नाटककार– लक्ष्मी नारायण लाल हैं। उन्होंने 'मादा कैक्टस', 'दर्पण', 'तोता–मैना', 'सूर्यमुखी', 'रातरानी', 'मिस्टर अभिमन्यु', 'कलकी', अब्दुल्ला दीवाना' जैसे नाटकों की रचना की है। उनके नाटकों में साधारण जीवनानुभवों को गहरे या महत्त्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास हुआ है।

विष्णु प्रभाकर का 'डाक्टर' मनोवैज्ञानिक नाटक है, जिसमें भावना और कर्त्तव्य का संघर्ष दिखाया गया है। लक्ष्मीकांत वर्मा के 'आदमी का ज़हर' में विकृत मूल्यों पर चोट हुई है। इसके अतिरिक्त समकालीन नाटक को समृद्ध बनाने में जिन नाटककारों की विशेष भूमिका है उनमें सुरेन्द्र वर्मा, राक्षस, रमेश बक्षी, हमीदुल्ला, ज्ञानदेव, अग्निहोत्री, बृज मोहन शाह, शंकर विशेष उल्लेखनीय हैं। सुरेन्द्र वर्मा के 'द्रोपदी', 'सेतुबन्ध' , 'विदूषक' और 'सूर्य की अन्तिम किरण से पहली किरण तक' चर्चित नाटक हैं 'सेतुबन्ध' और 'खलनायक', 'विदूषक' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर समकालीन जीवन के सार्थन प्रश्न उभारते हैं। 'सूर्य की अन्तिम किरण से पहली किरण तक' भी ऐतिहासिक परिवेश का नाटक है पर इसमें दाम्पत्य सम्बन्धों के साथ सत्तातन्त्र की बारीकी की छानबीन की गई है। 'मुद्राराक्षस', 'योर्स फेथफुली', 'मरजीवी', 'तिलचट्टा', 'तेंदुआ', 'गुफाये' ने भारतीय त्रासदी को, ब्यूरोक्रेसी को, यौन विकृतियों को, सामाजिक–राजनीतिक भ्रष्टाचार को नयें तलाशे गए शिल्प, सीधी चोट करती भाषा और नयी संवदेना के साथ अपने नाटकों में प्रस्तुत किया है।

महिला नाटककारों में कुसुम कुमार, शान्ति मेहरोत्रा, मन्नु भंडारी, मृदुला गर्ग, गिरीश रस्तोगी उल्लेखनीय हैं। इनमें कुसुम कुमार अलग पहचान बनाने में समर्थ हुई है। कुसुम कुमार के 'सेनो शेफाली', 'ओम क्रांति', 'दिल्ली ऊँचा सुनती है', 'रावणलीला', 'संसार को नमस्कार' आदि नाटक समस्याओं से घिरे व्यक्ति पर केन्द्रित हैं।

ऐब्सर्ड नाटकों की रचना विपिनकुमार (तीन अपाहिज, खोए हुए आदमी की खोज) सत्यव्रत सिन्हा (अमृत पुत्र), लक्ष्मीकांत (रोशनी एक नहीं है) मणि मधुकर (रस गन्धर्व, बुलबुल सराय, इकतारे की आंख), सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (बकरी की लड़ाई) लिखे और शम्भुनाथ सिंह आदि ने भी लोक नाट्य शैली में नाटक मणि मधुकर ने लोक कथाओं, लोक गीतों, राजस्थानी लोक नाट्य रूपों को हिन्दी में उतारा तो सर्वेश्वर दयाल ने पारसी नाट्य विधान और नौंटकी मिश्रित रूप को।

उपर्युक्त के अलावा अनेक नाटककार सक्रिय हैं। इध्न नाटक की सबसे बड़ी विशेषता उसकी प्रयोगशीलता है।

पाठ संख्या : **2.4**

संस्मरण और रेखाचित्र : सामान्य परिचय

2.4 संस्मरण और रेखाचित्र : सामान्य परिचय :

हिंदी गद्य विधाओं (नव्यतर) में संस्मरण तथा रेखाचित्र विधाएँ महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी हैं। इन विधाओं में लेखक सटीक प्रयोग कर रहे हैं। इसीलिए इनकी पृष्ठभूमि एवं विकास की चर्चा पृथक् से की जाती है। 'संस्मरण' शब्द संस्कृत के 'स्मृ' धातु से सम उपसर्ग और अन् प्रत्यय लगाकर बना है। इसका अर्थ है स्मरण करना। संस्मरण लेखक जा स्वयं देखता है, जिसका वह स्वयं अनुभव करता है, उसी का वर्णन करता है। इस निजता का आधार उसकी अनुभूतियाँ, संवेदनाएँ तथा अनुभव हैं। वस्तुतः स्मृति ही संस्मरण का रूप है। संस्मरण किसी साधारण अथवा विशिष्ट व्यक्तित्व से संबंधित किसी संवेदनशील स्मृति के प्रत्यक्षीकरण को माना जा सकता है। इतना ही नहीं, किसी व्यक्ति, घटना, दृश्य, वस्तु को आत्मीयता से स्मरण करते हुए उसका विवेचन संस्मरण की श्रेणी में आ जाता है। संस्मरण में आत्मीय स्मृति का विशेष महत्त्व है।

संस्मरण विधा को कुछ विद्वानों ने लचकदार विधा स्वीकार किया है। नव्य विधाओं में संस्मरण और रेखाचित्र के कुछ तत्व समान है, कुछ विद्वानों ने तो दोनों विधाओं को एक स्वीकारते हुए 'संस्मरणात्मक रेखाचित्र' एक नवीन विधा का रूप प्रदान किया है। ऐसा अनेक बार रेखाचित्रों और संस्मरणों को पढ़ते समय लग सकता है। दोनों विधाओं–संस्मरण और रेखाचित्र में समानताएँ अधिक हैं। दोनों विधाओं के मूल अंतर को स्पष्ट कर हम प्रत्येक की सम्यक् पहचान कर सकेंगे। संस्मरण और रेखाचित्र की तुलना करते हुए बाबू गुलाबराय लिखते हैं – ''जहाँ रेखाचित्र वर्णनात्मक अधिक होते हैं वहाँ संस्मरण विवरणात्मक अधिक होते हैं। संस्मरण जीवनी साहित्य के अंतर्गत आते हैं। वे प्रायः घटनात्मक होते हैं, किंतु वे घटनाएँ सत्य होती हैं और साथ ही चरित्र की परिचयात्मक भी। उनमें थोड़ा नएपन का भी आकर्षण रहता है। संस्मरण चरित्र के एक पहलू की झाँकी देते हैं किंतु रेखाचित्र व्यक्ति के व्यापक व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हैं। उनमें व्यक्ति की भीतरी और बाहरी स्वरूपता कुछ स्पष्ट रेखाओं में व्यक्त हो जाती है।.....रेखाचित्र जितना सत्य के निकट हो उतना ही अच्छा है। उसमें थोड़ी अतिरंजना विनोद की सामग्री अवश्य उपस्थित कर देती है किंतु विनोद चुटीला नहीं होना चाहिए।'' प्रस्तुत अभिमत आंशिक रूप में सही माना जा सकता है। रेखाचित्र में व्यक्ति की प्रवृत्तिगत विशिष्टताओं का अतिरंजित रूप–काल्पनिक प्रस्तुति विचारणीय है।

दोनों विधाओं के अंतर को कुछ बिंदुओं के आधार पर समझना उचित होगा। संस्मरण प्रायः प्रसिद्ध व्यक्तियों के लिखे जाते हैं, तथा इनके लेखक भी उसी प्रकार की ख्याति को प्राप्त किए होते हैं, यथाः बनारसीदास चतुर्वेदी तथा महादेवी वर्मा हिंदी के सुपरिचित साहित्यकर्मी हैं – इनके संस्मरण प्रतिष्ठित लेखकों एवं नेताओं पर लिखित हैं। रेखाचित्र में इस प्रकार का बंधन नहीं है – महादेवी के रेखाचित्र इस पक्ष की सम्यक् प्रतीति करा देते हैं।

इनके रेखाचित्रों के पात्र सामान्य तथा समाज में तिरस्कृत दीन–दलित व्यक्तियों को आधार बनाकर लिखे गए हैं। संस्मरण में देश, काल, पात्र तीनों का वर्णन रहता है। जबकि रेखाचित्र में देश, काल का वर्णन

अनिवार्य नहीं। संस्मरण और रेखाचित्र के अंतर को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि संस्मरण में रेखाचित्र की अपेक्षा आत्मनिष्ठता अधिक होती है। संस्मरण लेखक कोई भी संस्मरण लिखते समय अपने विषय में यथास्थान कुछ व्यंजित कर देता है जबकि रेखाचित्रकार अपने विषय में मौन रहता है। हालाँकि यह अंतर महादेवी के रेखाचित्रों में नहीं है, उनमें उनकी निजता अनेक स्थानों पर बनी रहती है, इसीलिए उनके रेखाचित्र कई बार 'संस्मरणात्मक रेखाचित्र' की कोटि में आ जाते हैं। दोनों विधाओं के पारस्परिक अंतर को शैली के आधार पर भी समझा जा सकता है। संस्मरण लेखक किसी भी शैली को आत्मसात् कर सकता है। जबकि रेखाचित्रकार को चित्रात्मक शैली को अपनाना पड़ता है। संस्मरण सदैव अतीत का होता है–किसी की स्मृति को लेखनीबद्ध किया जाता है जबकि रेखाचित्र वर्तमान का भी हो सकता है। दोनों विधाओं के सुपरिचित लेखक बनारसीदास का अभिमत विशेष द्रष्टव्य है – ''रेखाचित्र में किसी वस्तु या व्यक्ति के जीवन का चित्रण होता है, उसके प्रकाश भाग तथा छाया भाग के साथ गुण–दोष का विधिवत वर्णन करते हुए संस्मरण में मुख्यतया पुरानी बातें याद की जाती हैं। चरित्र–चित्रण तो दोनों में हो ही जाता है। संस्मरण प्रायः बीती हुई का, दिवंगत व्यक्तियों के बारे में लिखे जाते हैं।'' पं. चतुर्वेदी जी की यह धारणा विवादास्पद है कि संस्मरण दिवंगत व्यक्तियों के विषय में लिखे जाते है। वस्तुतः जीवित व्यक्तियों के साथ व्यतीत क्षणों–स्मृतियों को भी संस्मरण रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है–ऐसा बंधन मान्य नहीं। डॉ. नगेन्द्र इन दोनों विधाओं में किसी प्रकार का विरोध नहीं मानते। उनकी दृष्टि में इनमें मौलिक अंतर नहीं है, दोनों की जाति एक है तथा संस्मरण रेखाचित्र का एक प्रकार है। अब संस्मरण और रेखाचित्र को पृथक्–पृथक् विधारूप में विवेचित–विश्लेषित किया जाता है। दोनों विधाओं की अपनी पहचान बन चुकी है तथा समृद्ध परंपरा है। संस्मरण को लेखक, विषयवस्तु तथा शैली के आधार पर विभाजित किया जाता है। वस्तुतः नवीन गद्य विधाओं में संस्मरण का आधार किसी न किसी रूप में प्रत्येक विधा में रहा है। कवियों, कथालेखकों एवं आलोचनाओं के संस्मरणों में भाव और भाषा प्रस्तुति का अंतर होना स्वाभाविक है। महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत, बच्चन तथा दिनकर आदि के संस्मरण उनके काव्य रूप की प्रतीति कराते हैं। पंत पर लिखित महादेवी के संस्मरण की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं – ''आज से साठ वर्ष पूर्व हिमालय के हिमावृत शिखरों के छोटे बड़े ऊँचे–नीचे दर्पण खंडों में अपनी शबल हरित छवि देखने में तल्लीन कौसानी में कवि ने प्रथम आँखें खोली थीं। यदि उसे हिमालय की उर्ध्व अचल साधना और धरती की आकुल सजलता का दास एक साथ मिल गया तो आश्चर्य नहीं।'' कथाशिल्पियों के संस्मरणों की पहचान के लिए हम यहाँ जैनेन्द्र कुमार के महात्मा भगवानदीन के संस्मरण से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहे हैं – उनका जीवन स्फूर्ति से और कर्म से भरा रहा है। आडंबर और आकांक्षा जैसी वस्तु उनमें नहीं है। परिणाम यह है कि ऊँची–नीची नाना परिस्थितियों में रहकर भी वह अपनेपन से दूर नहीं गए थे। सदा शत–प्रतिशत सहज और सरल बने रहे थे। आलोचकों के संस्मरण कवियों एवं कथा लेखकों से किस सीमा तक भिन्न है–कुछ पंक्तियों बाबू गुलाबराय के संस्मरण से उद्धृत हैं – ''हम लोग एक ब्रह्मणी बुढ़िया के घर के दूसरे भाग में रहते थे। उसका नाम था दिवारी की माँ। अपेक्षाकृत अभावों की दुनिया में पला था। न तो मेरी महत्वाकाक्षाएँ ही बढ़ी हुई थीं और न सुविधाओं का नितांत अभाव था।''

विषयवस्तु के अनुसार संस्मरणों को साहित्यिक पुरुषों, राजनैतिक–पुरुषों यात्रावृत्तों तथा मानवीय गुणों से संपन्न साधारण–पुरुषों आदि में विभाजित किया जा सकता है। साहित्यिक पुरुषों के संस्मरण जीवनी तथा आत्मकथा विधाओं में विशेष सहायक रहते हैं तथा यात्रावृत्तों में संस्मरण कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं – इन्हें हम मूल पुस्तकों में देख सकते हैं। यही कारण है कि संस्मरण को एक महत्त्वपूर्ण विधा माना जाता है। यात्रा संबंधी संस्मरणों में राहुल जी के संस्मरण यात्रा के पन्ने, बच्चन के यात्रा संस्मरण नए पुराने झरोखे, गुलाबराय के यात्रा संस्मरण, मेरी असलफताएँ तथा निर्मल वर्मा के यात्रा संस्मरण चीड़ों पर चाँदनी विशेष उल्लेखनीय हैं।

2.4.1 जीवनी और आत्मकथा :

संस्कृत साहित्य में विषद् सिद्धान्त विवेचन तथा प्रौढ़ साहित्य दर्शन तो उपलब्ध हैं, किन्तु उसके अनुसार व्यावहारिक समीक्षा का अभाव ही था। संस्कृत में व्यावहारिक समीखा टीकापद्धति, सूक्तियों तथा सिद्धांतों के स्पष्टीकरण के लिए काव्य–ग्रन्थों से उदाहरण तथा उनकी समीक्षापूर्ण व्याख्या के रूप में ही मिलती है। हिन्दी के भक्तिकाल और रीतिकाल में भी इन्हीं तीन के दर्शन होते हैं। रीतिकाल सैद्धान्तिक विवेचन की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है, किन्तु कुल मिलाकर वह संस्कृत साहित्य की उद्धरणी ही रही।

गद्य की अन्य विधाओं की भांति काफी जीवनी साहित्य प्रकाश में आया है तथा कुछ महत्त्वपूर्ण आत्मकथा साहित्य भी रचा गया है। विष्णु प्रभाकर विरचित *आवारा मसीहा* जीवनी साहित्य में एक उल्लेख्य रचना मानी जाती है। जीवनी की आत्मकथा, संस्मरण तथा रेखाचित्र से घनिष्ठ संबंध रहा है। जीवनी लेखक अनेक शैलियों को प्रस्तुति का आधार बनाता है।

संस्कृत साहित्य में जीवनी के लिए 'जीवनचरित्रम्' शब्द का प्रयोग हुआ है। भारतेंदु युग से जीवनी (बायोग्राफी) का एक साहित्यिक विधा के रूप में प्रचलन हुआ–हालाँकि मध्ययुग में चरित्र, चरित तथा नाम आदि रूप में इसका प्रचलन था। जीवनी किसी व्यक्ति विशेष के जीवन और कृतित्व का विवरण रहा है। किसी साहित्य मनीषी अथवा सुपरिचित व्यक्ति के जीवन का सच्चा यथार्थ और कहीं–कहीं आदर्श रूप जीवनी में प्रस्तुत किया जाता है, जीवनी को इसीलिए किसी व्यक्ति विशेष के जीवन की किन्हीं महत्त्वपूर्ण घटनाओं–संस्मरण की भाँति कराता चलता है। इसमें यथार्थ एवं कल्पना दोनों का आश्रय लेखक लेता है। यही कारण है जीवनी लेखक अनेक विधाओं एवं शैलियों का प्रयोग रोचकता, प्रभावोत्पादकता के लिए करता है इसका लेखन वह उसकी प्रेरणा अथवा प्रभाव से करता है। हिंदी में विष्णु प्रभाकर ने शरत के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रभावित हो *आवारा मसीहा* जीवनी की रचना की। यह रचना शरत् के जीवन की कुछ घटनाओं, संदर्भों–प्रसंगों के साथ उनके रचना–कर्म की सार्थक पहचान कराती है। यही कारण है कि जीवनी और आत्मकथा के अंतर को अपने तथा दूसरे व्यक्ति के आधार पर समझा जा सकता है। यह सही है कि जीवनी का आधार दूसरा व्यक्ति रहता है, उसके जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्ष रहते हैं पर इस प्रस्तुति में जीवनी लेखक की अपनी अभिरुचियों, धारणाओं को भी जाना जा सकता है। जीवनी के माध्यम से वह दोहरे दायित्व का निर्वाह करता प्रतीत होता है।

जीवनी लेखक अपनी रचना को प्रामाणिक बनाने के लिए अनेक आधार अपनाता है। इस विशिष्ट व्यक्ति के जीवन और कृतित्व को समझने के लिए उसकी रचनाओं को आधार बनाता है, उसके समकालीनों से उसकी जानकारी लेता है उसके परिवार के किसी सदस्य, निकटस्थ मित्र से अनुपलब्ध परिचय प्राप्त करता है। इस प्रकार अंतः एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर वह अपने विवेच्य लेखक को समझने का प्रयत्न करता है। जीवनी लेखन से पूर्व उसे अनेक तथ्य एकत्र करने पड़ते हैं। यह कार्य बड़ा ही श्रमसाध्य होता है–एकत्रित सामग्री को वह आवश्यकतानुसार संयोजित करता है। उसका लेखन–प्रक्रिया में यह प्रयास रहता है कि जीवनी शुष्क अथवा नीरस न हो। इसके लिए वह अपने सृजन धर्म एवं अपनी मौलिकता से कार्य लेता है। पाठकीय संवेदना एवं साहित्यिकता के लिए वह यथास्थान कल्पना का आश्रय भी लेता है। कथात्मक शैली का प्रयोग विशेष करता है। इस समस्त प्रक्रिया में उसे निरपेक्ष एवं सापेक्ष दोनों रूपों में अपना दायित्व निभाना पड़ता है। जीवनी को किसी व्यक्ति का कोरा इतिहास मानना उचित न होगा। यह सही है कि जीवनी में विभिन्न पहलुओं–बचपन, परिवार, शिक्षा, वैयक्तिक अभिरुचियों अथवा प्रभाव, राजनीतिक, सामाजिक गतिविधियों तथा जीवन की प्रमुख घटनाओं का विवेचन होता है–यह विवरण होते हुए इतिहास नहीं है। किसी भी जीवनी का महत्व इस बात पर निर्भर करता है कि जीवनी लेखक तथ्यों एवं सत्यों को ईमानदारी से प्रस्तुत कर पाया है अथवा नहीं। जीवनी पढ़ते हुए पाठक जीवनी लेखक

तथा जीवनी के मूल व्यक्ति से एक साथ परिचित हो जाता है। ऐसा करने के लिए जीवनी में शिप्र गति सटीक और प्रयोग किए जाते हैं। जीवनी लेखक विशिष्ट व्यक्ति के जीवन में घटित घटनाओं को कलात्मक ढंग से चित्रित करता है। संदर्भोल्लेखों से कहीं–कहीं पाठक डूबने लगें तो प्रस्तुति की रोचकता से वह बच पाता है। यहाँ पर यह पक्ष विचारणीय है कि जीवनी लेखक को अपनी निजी मान्यताओं, धारणाओं, विचारों तथा दर्शन आदि को व्यंजित करने की पूर्ण स्वतंत्रता नहीं होती पर ऐसा लेखक कुशलता से कर लिया करता है। उसका मूल प्रतिपाद्य व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व और कृतित्व पक्ष को अधिक से अधिक पाठकों के सम्मुख लाना होता है। जीवनी के प्रति पाठकों में विश्वास बनाए रखना आवश्यक है। कल्पना का आश्रय लेते हुए जीवनी का आधार यथार्थ होना चाहिए। जीवनी में अन्य विधाओं एवं शैलियों को लेखक अपनाता है। कलात्मक जीवनी, लेखनकार्य नहीं होता–इसमें जीवनी लेखक का पर्याप्त समय तक साधना करनी पड़ती है, इस साधना के साथ उसका स्वयं का सृजनधर्मी होना अत्यावश्यक है। इसी से प्रस्तुति में मौलिकता, रोचकता तथा कलात्मकता बनी रहती है।

जीवनी की भांति **आत्मकथा** भी हिंदी गद्य की नवीन विधाओं में एक है। पश्चिम के प्रभाव से इस विधा का विकास हिंदी में हुआ। आत्मकथा स्वयं लिखी जाने वाली जीवनी है, इसे 'स्व' के जीवन की स्वरचित कथा मानी जा सकती है। वस्तुतः 'स्व' इच्छा मानव जाति में सभ्यता के आदिमकाल से रही है। विश्व के प्रथम कलाकार ने इस इच्छा के वशीभूत होकर जिस किसी स्तर का प्रयास किया होगा, उतना वह महत्त्वपूर्ण न भी हो, तब भी इतना तो निश्चय ही कहा जा सकता है कि उसका वह प्रयास अपनी अभिव्यक्ति की इच्छा के संतुष्ट करने के लिए रहा होगा। इसलिए ऐसा माना जाता है कि प्रत्येक कलाकार अपनी आत्मकथा लिखता है। 'आत्मकथा' की अनेक परिभाषाएँ प्रचलित हैं। सभी ने इसका आधार 'स्व' माना है। लेखक अथवा नेता अपने जीवन के अतीत को कथारूप में प्रस्तुत करता है–इसमें भी वह अनेक शैलियों को अपनाता है पर जब साहित्यिक आत्मकथा की चर्चा करते हैं तो उसमें कुछ कलात्मक एवं साहित्यिक गुणों का होना अपेक्षित है। लेखक अपने अतीत की घटनाओं, संदर्भों को ईमानदारी से प्रस्तुत करता है तो ऐसी आत्मकथा अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है।

आत्मकथा में सजीवता, कलात्मकता तथा रोचकता अन्य गुणों की भाँति अनिवार्य गुण अथवा तत्व माने जाते हैं। आत्मकथा जीवन पर एक आकृति (पैटर्न) आरोपित करती है और उसी में सुसंगत कथा गठित की जाती है। इस स्थिति में जीवन के कुछ मोड़ निश्चित कर लिए जाते हैं। इन मोड़ों में परस्पर संबंध स्थापित किए जाते हैं और 'आत्म' तथा 'बहिर्गत' के संबंधों में सुसंगति खोजी जाती है। आत्मकथा लेखन में आयु (आत्मकथा–लेखक) का विशेष महत्व होता है। हिंदी की सुपरिचित आत्मकथा–लेखकों ने अपनी आत्मकथाएँ प्रौढ़ावस्था में लिखी हैं तथा इन्हें काफी महत्व मिला है।

'आत्मकथा' में लेखक संस्मरण, रेखाचित्र तथा जीवनी सरीखी विधाओं का आश्रय लेता है। 'आत्मकथा' विधा स्व पर अवलंबित है जबकि जीवनी अन्य व्यक्ति के जीवन पर आधारित होती है। जीवनी में सत्य की खोज का प्रयास रहता है। जबकि 'आत्मकथा' में खोज की आवश्यकता कतई नहीं। लेखक को कहीं जाने की जरूरत नहीं, सब कुछ उसके पास होता है। अंतः एवं बाह्य के आधार पर 'आत्मकथा' तथा 'जीवनी' की पहचान की जा सकती है। आत्मकथा में लेखक अपने अंतर्जगत की गहराइयों का संस्पर्श करता है। जबकि जीवनी में लेखक अपने व्यक्ति विशेष के जीवन के सत्यों को बाह्य आधार पर ढूंढने का प्रयास करता है। इतना ही नहीं, कुछ विद्वान 'आत्मकथा' को जीवनी से श्रेष्ठ मानते हैं। इसे कलात्मक विधा स्वीकार किया गया है।

जीवनी तथा आत्मकथा गद्य विधाओं में लेखक अन्य गद्य विधाओं का आश्रय भी लेता है। साथ ही अनेक शैलियों का प्रयोग इन विधाओं में लेखक करता है। यहाँ एक बात विशेष ध्यातव्य है कि इन विधाओं में कहानी अथवा कथातत्व का समावेश किसी न किसी रूप में अवश्य रहता है, पर जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र,

यात्रावृत्त सरीखी विधाएँ कहानी विधा से भिन्न हैं। कहानी सरीखी कल्पना का इसमें अभाव रहता है, भले ही कहीं–कहीं जीवनी तथा आत्मकथा में कल्पना आ जाती है पर इन लेखकों से अपेक्षा रहती है कि ये अपने विषय में (आत्मकथा में) तथा दूसरों के विषय (जीवनी) में सही एवं प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध कराएँ। हिंदी में जीवनी साहित्य का विकास अनेक रूपों में हो रहा है पर *आवारा मसीहा* (विष्णु प्रभाकर) एक प्रामाणिक जीवनी स्वीकार की जाती है।

2.4.1.1 भारतेन्दु युग :

हिन्दी आलोचना का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से ही माना जाता है। वास्तव में पाश्चात्य साहित्य और विचारधारा के सम्पर्क से जिस प्रकारा की समीक्षा इस युग से शुरू हुई वह भारतीय साहित्य शास्त्र की सैद्धान्तिक समीक्षा से बहुत भिन्न है। इस युग में गद्य के प्रचार–प्रसार के अलावा नवीन शिक्षा पद्धति के प्रचलन और पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन से इसके विकास के रास्ते खुले। भारतेन्दु युग में आधुनिक समीक्षा का आरम्भ श्री बद्री नारायण चौधरी प्रेमधन द्वारा लाला निवास दास की 'संयोगिता स्वयंवर' की आलोचना से हुआ। भारतेन्दु ने लगभग सड़सठ पृष्ठों में भारतीय तथा पाश्चात्य नाट्य सिद्धान्तों का समन्वय किया और परवर्ती सैद्धान्तिक समीक्षा की दिशा निर्धारित की है। अम्बिका दत्त व्यास ने काव्य मीमांसा में नए साहित्य रूप उपन्यास का सैद्धान्तिक आधार खोजने का प्रयत्न किया। इसमें उन्हें अवश्य सफलता नहीं मिली किन्तु उनके युग की जागरूकता का संकेत तो यह देती ही है। इसके साथ ही छुट–पुट लेख भी इस युग में सैद्धान्तिक समीक्षा के सूत्रपात का आभास देते हैं।

व्यावहारिक समीक्षा :

भारतेन्दु युग की व्यावहारिक समीक्षा का प्रधान रूप पुस्तक परिचय ही है। इस काल की पत्रिकाओं में 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन', 'हरि चन्द्र चन्द्रिका', 'कविवचन सुधा', 'आनन्द कादम्बिनी', 'हिन्दी प्रदीप' का समीक्षा के विकास में महत्त्वपूर्ण योदान है। व्यावहारिक समीक्षा का पथ तो भारतेन्दु ने अपने ग्रंथ नाटक में रत्नावली के भ्रष्ट अनुवाद की तीखी व्यंग्यात्मक आलोचना द्वारा प्रशस्त कर दिया था किन्तु उसे अधिक स्पष्ट रूप दिया प्रेमधन और बाल कृष्ण भट्ट ने। बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधंन ने श्री निवास दास कृत 'संयोगिता स्वयंवर' की और गदाधर सिंह कृत 'बंगविजेता' दोनों के गुणों और अनुवादों की विस्तृत आलोचना 'आनन्द कादम्बिनी' में की। 'बंगविजेता' के अनुवाद और मूल दोनों के गुणों और दोषों की समीक्षा की किन्तु उनकी आलोचनात्मक प्रतिभा का प्रखर स्वरूप 'संयोगिता स्वयंवर' की समीक्षा से मिलता है। इसमें नाटक के ऐतिहासिक, देश, काल, भाषा शैली चरित्र आदि तत्त्वों को ध्यान में रखा गया है। स्थान–स्थान पर व्यंग्यात्मक शैली में नाटक पर प्रहार भी किए गए है।

इस युग के दूसरे महत्त्वपूर्ण आलोचक प. बालकृष्ण भट्ट हैं, इन्होंने हिन्दी प्रदीप में, 'सच्ची आलोचना' शीर्षक से 'संयोगिता स्वयंवर' की कटु आलोचना की। ऐतिहासिक नाटक और इतिहास में क्या भेद होता है, ऐतिहासिक सत्यों का कैसे और कितना निर्वाह होना चाहिए, इन सबका मार्मिक विश्लेषण उन्होंने किया है। शैली में उनके व्यक्तित्व का मौजीपन और व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति भी उभर आई है। इसके अलावा इन्होंने 'नीलदेवी', 'परीक्षा गुरु' और 'एकान्तवासी योगी' की आलोचनाएं भी लिखी। प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' पत्रिका में ललित नाटक 'महारानी पद्मावती' आदि कई पुस्तकों की आलोचना की। इनके अलावा राधाकृष्ण दास और बालमुकुन्द गुप्त ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया।

भारतेन्दु युग की समीक्षा मुख्यतः पुस्तक समीक्षा तक ही सीमित थी। समीक्षा की किसी पुष्ट शास्त्रीय पद्धति का विकास इस युग में नहीं था, व्यक्तिगत रूचि ही प्रधन मानदण्ड थी। ये मुख्यतः गुण दोषों का संकेत करने वाली स्थूल निर्णयात्मक शैली की समीक्षाएं थीं। समीक्षक दोष की अधिक देखता था। किन्तु इसके मूल में साहित्य की प्रेरणा देने की इच्छा भी थी। भट्ट और प्रेमधन की समीक्षाओं के कथानक, चरित्र–चित्रण आदि की दृष्टि से विचार हुआ है।

2.4.1.2 द्विवेदी युग :

द्विवेदी युग में भारतेन्दु युग से प्राप्त भारतीय और पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांतों की आवश्यकता और आलोचक के दायित्व के प्रति जागरूकता का एहसास ही मुख्य है। व्यावहारिक आलोचना को दोष निरूपण तक सीमित रखने की प्रवृत्ति भी द्विवेदी युग को अपने पूर्ववर्ती युग से उत्तराधिकार में मिली थी। द्विवेदी युग की प्रारम्भिक आलोचनाओं (पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी की हिन्दी कालीदास की समालोचना, हिन्द शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना) में दोष–दर्शन की ही प्रधानता लक्षित होती है। किन्तु शीघ्र ही यह मान लिया गया कि आलोचना का आधार गुण–दोष दोनों का विवेचन होना चाहिए।

द्विवेदी युग के आलोचकों के सामाजिक प्रतिमानों (रस, अलंकार, ध्वनि) को ही आधार बनाया किन्तु आलोचना के प्रारूप और साहित्य के सामाजिक उत्तरदायित्व सम्बन्धी धारण को पश्चिम से भी ग्रहण किया गया। इसी को निर्दिष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा हे कि इस युग में यद्यपि आलाचेना में बहुत उन्नति हुई पर उसका स्वरूप रूढ़िगत ही रहा।

पं महावीर प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त मिश्र बन्धु (पं. गणेश बिहारी मिश्र, पं. श्याम बिहारी मिश्र, पं शुकदेव बिहारी मिश्र) पं पद्म सिंह शर्मा, पं गोबिन्द नारायण मिश्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पं माधव राव प्रसाद मिश्र, लाला भगवान दीन और पं. कृष्ण बिहारी मिश्र इस युग के प्रमुख आलोचक थे।

सैद्धान्तिक आलोचना द्विवेदी युग में मुख्य नहीं थी। नागरी प्रचारिणी पत्रिका के पहले भाग में तीन सैद्धांतिक निबन्ध प्रकाशित हुए– समालोचना, समालोचनादर्श तथा गद्य काव्य मीमांसा। समालोचना निबन्ध पं गंगा प्रसाद अग्निहोत्री की समालोचना पद्धति से प्रभावित थे। इसी प्रकारा पोप के ऐसे ज्ञान क्रिटिसिज़्म की समालोनादर्श नामक पद्यबद्ध जगन्नाथ दास रतनाकर ने किया। इस प्रकार अनुवाद के माध्यम पहले– पहल पश्चिम के आलोचना के बारे में हिन्दी के पाठकों को परिचय दिया गया।

उपयोगी भारतीय और पाश्चात्य सिद्धान्तों के समन्वय का प्रयास पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया उन्होंने उसे व्यावहारिक समीक्षा से सम्बद्ध करने का प्रयास भी किया।

व्यावहारिक आलोचना

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रमुख आलोचनात्मक कृतियां है– 'नैषध चरित चर्चा', 'विक्रमांकदेव चरितचर्चा', 'कालीदास की निरंकुशता, 'नागार्जुनीय भूमिका' इससे स्पष्ट है कि उनकी प्रमुख आलोचनाएं संस्कृत कवियों पर ही हैं। इनके प्रति उनका आदर भाव था, किन्तु उनका नैतिक परायण एवं उपयोगितावादी दृष्टिकोण उन्हें उनसे समरस नहीं होने देता।

मिश्र बन्धुओं की समीक्षा निर्णयात्मक और तुलनात्मक है। उन्होंने हिन्दी के नौ श्रेष्ठ काव्यों को चुनकर हिन्दी नवरत्न' का प्रणयन किया और उनको भी बृहत्त्रयी, मध्यत्रयी और लघुत्रयी के अंतर्गत रखा। डॉ. भगतवती मिश्र के अनुसार वे मूलतः अलंकारवादी थे, इसलिए उन्होंने देशकाल की सामग्री का उपयोग भी किया तथा साथ ही कवियों के जीवन पक्ष पर भी विचार करते हैं।

मिश्र बन्धुओं के श्रेणी–विभाजन का आधार स्पष्ट नहीं था। किन्तु उसमें तुलनात्मक समीक्षा के बीज छिपे थे। यह बीज पत्र पद्म सिंह शर्मा की 'बिहारी' पुस्तक में प्रस्फुटित हुआ। शर्मा जी ने अन्य कवियों के मिलते–जुलते पद्यों की बिहारी के पारिपार्श्व में रखकर बिहारी को उत्कृष्ट सिद्ध किया।

द्विवेदी युग में प्राचीन टीका पद्धति का महत्त्व कम होता गया। पं. ज्वाला प्रसाद मिश्र की 'बिहारी सतसई की टीका' की, पं. पद्म सिंह ने पद्मावती और पं. सुधाकर द्विवेदी की टीका की शुक्ल जी ने कड़ी आलोचना की। फिर भी लाला भगवानदीन ने 'रामचन्द्रिका' (केशव), 'कवि प्रिया', 'केशव और बिहारी सतसई', की टीकाएं लिखीं।

द्विवेदी युग में शोधमूलक आलोचना भी हुई। इसमे पण्डित गौरी शंकर हीराचन्द ओझा के निबन्ध 'आनन्द

विक्रम सम्वत् की कल्पना', 'पृथ्वीराज रासो' का निर्माण काल और पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के 'जयसिंह काव्य' और 'पृथ्वीराज' महाकाव्य उल्लेखनीय हैं

द्विवेदी युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आलोचना भाषा सम्बन्धी है। आचार्य शुक्ल ने कहा है कि द्विवेदी जी ने कई पुस्तकों की भाषा आदि की खरी आलोचना करके हिन्दी साहित्य का बड़ा उपकार किया। द्विवेदी युग की समीक्षा के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उसमें वैज्ञानिकता, गम्भीरता और गरिमा का प्रायः अभाव है। इस काल में भारतीय और पा चात्य काव्य–शास्त्र का सहारा तो लिया गया पर आलोचक व्यक्तिगत रागद्वेष से मुक्त नहीं हो सके। व्यक्तिगत रूचि के बल पर काव्य को आंकने की प्रवृत्ति ही प्रबल रही, किन्तु इसके योगदान को उपेक्षणीय भी नहीं ठहराया जा सकता है।

सैद्धांतिक आधार :

शुक्ल जी ने सिद्धांत–मीमांसा और व्यावहारिक समीक्षा को इतना घुला मिला दिया कि इन दोनों का अलग–अलग करना प्रायः असम्भव हैं उनके सिद्धांत काव्य में रहस्यवाद, काव्य में अभिव्यंजनवाद, रस मीमांसा, साध ाारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद, काव्य में प्राकृतिक दृश्य, रसात्मक बोध के विविध रूप, काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था, कविता क्या है आदि को रखा जा सकता है। प्रयोगात्मक समीक्षा के अन्तर्गत गोस्वामी तुलसीदास जायसी ग्रंथावली और सूरदास की भूमिकाओं तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास को रख सकते हैं।

शुक्ल जी की आलोचना उनके जीवन सिद्धांत से उपजी है। उनका प्रमुख जीवन सिद्धांत है लोक मंगल और उसका साधन। लोक धर्म डॉ. भगवतस्वरूप मिश्र के अनुसार शील–विकास एवं रागात्मक प्रसार को ही शुक्ल काव्य का प्रयोजन मानते हैं। इस शील विकास की कसौटी समाज या लोक–मंगल है। इस प्रकार शुक्ल की काव्य सम्बन्धी धारणा का मूल आधार लोक मंगल और व्यष्टि के शील विकास का सामंजस्य हैं उनकी समीक्षा के प्रमुख तत्त्व हैंः व्यक्तिगत योगक्षेम से मुक्त रागात्मक प्रसार लोक मंगल तथा रसानुभूति। ये तत्त्व एक दूसरे के पूरक, पोषक तथा अन्योन्याश्रित है। शुक्ल की कविता और आलोचना दोनों ही क्षेत्रों में वादों के विरोधी थे। उन्होंने वादों का विवेचन रस दृष्टि से किया। इसके साथ ही नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा में बाधक तत्त्वों का निराकरण उन्होंने किया।

सूर, तुलसी तथा जायसी पर लिखे प्रबन्धों तथा साहित्य के इतिहास में, मुख्यतः उनकी व्यापारिक समीक्षा उपलबध होती है। शुक्ल जी ने जिस आधार पर समीक्षा की, उस पर तुलसी खरे उतरे। यही कारण है कि वे सूर तथा अधिकांश रीतिकालीन कवियों और छायावादी कवियों से न्याय नहीं कर पाए। वास्तव में सूरदास को श्रेष्ठ मानते हुए भी वे उन्हें तुलसीदास के समकक्ष नहीं रखते क्यों कि उन्हें लोकपक्ष पर उतना ध्यान नहीं दिया। कबीर को उन्होंने विवेच्य ही नहीं समझा। पन्त की प्रकृति सम्बन्धी कविताओं तथा निराला की सामाजिक और ऐतिहासिक प्रसंगों से जुड़ी कविताओं की उन्होंने प्रशंसा की, किन्तु उनका मूल स्वर विरोधी रवैये का ही रहा। इस प्रकार शुक्ल जी पहले समीक्षक हैं जिन्होंने हिन्दी समीक्षा को ऐतिहासिक धरातल पर प्रतिष्ठि किया। लेकिन कहीं–कहीं विशेष रूप से आधुनिक साहित्य के विवेचन में अनुदान ही सिद्ध हुए।

2.4.1.3 शुक्लोत्तर युग :

शुक्लोत्तर युग में आलोचना का बहुमुखी विकास हुआ। इस युग में तीन बड़े आलोचकों में नन्द दुलारे वाजपेयी ने शुक्ल जी की त्रुटियों का उल्लेख करते हुए नवीन पद्धति के निर्माण की चेष्टा की तो हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और नगेन्द्र ने शुक्ल जी से टकरा कर एक ओर श्रेष्ठता स्वीकार की तो दूसरी ओर अपने लिए नया मार्ग ढूँढकर हिन्दी आलोचना को आगे बढ़ाया। डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार नवीन पद्धति का निर्माण करने पर भी इन्हें शुक्ल संस्थान के आलोचकों के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

सौष्ठववादी आन्दोलन :

सृजन के क्षेत्र में जिन प्रेरक शक्तियों से छायावाद का जन्म हुआ, उन्ही शक्तियों ने भावना क्षेत्र में

सौष्ठववादी समीक्षा को रूपायित किया। सौष्ठववादी समीक्षा का मूलाधार काव्य की लोकोत्तर भाव क्षमता की अनुभूति व इसी का सौष्ठव व साक्षातकार है। काव्य की सम्पूर्ण विचारधाराएं, काव्य शैलियों का वर्ण्य विषय तथा रचना के नियम अपने से ही निर्मित होने वाले इसी सौन्दर्य में परिणत हो जाते हैं। इसी सौन्दर्य की सम्यक् संवदेना की सौष्ठववादी समीक्षक की दृष्टि में काव्यलोचना का प्राण है।

सौष्ठवादी समीक्षक सम्पूर्ण काव्य के वस्तु सौन्दर्य पर विचार करता है। यह भाव पक्ष और कला पक्ष पृथक् न करके उनका संशिलष्ट विवेचन करता है। वह मुख्यतः विशुद्ध काव्य की दृष्टि से आलोचना करता है। नीति, दर्शन, संस्कृति को बाह्य काव्योत्तर मानता है। वह कलाकृ ति की अपेक्षा कलाकार के व्यक्तित्व को अधिक महत्त्व देता है। उनका दृष्टिकोण स्वछंदतावादी हैं इसलिए प्रत्येक रचना और रचनाकार के लिए स्वतंत्र शास्त्रीय सिद्धांत को अपनाता है और यह उसे कलाकृति में से प्राप्त होता है।

सौष्ठववादी समीक्षा के सभी तत्त्व छायाादी कवियों के चिन्तन से प्राप्त हुए हैं। सौष्ठववादी समीक्षकों के सर्व प्रमुख नन्द दुलारे वाजपेयी हैं। वाजपेयी जी ने न केवल शुक्ल की सीमाओं का उद्घाटन किया अपितु छायावादी काव्य के सन्दर्भ में उनके दृष्टिकोण को भी नवीन साहित्यिक संवेदना के उपयुक्त नहीं माना। वाजपेयी जी ने अपने सौन्दर्यवादी साहित्यिक सिद्धांत की घोषणा इस प्रकार की– 'सौन्दर्य की चेतना, चेतना ही जीवन है अतएव काव्यकला का उद्देश्य सौन्दर्य का ही उन्मेष करना है।

वाजपेयी जी की मुख्य देन है कि उन्होंने शुक्ल जी के प्रबन्धवाद तथा भाववाद के कठोर नियन्त्रण से हिन्दी समीक्षा को मुक्ति दिलाई।

मानववादी समाज शास्त्रीय समीक्षा :

शुक्ल जी की परम्परा में आते हुए भी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने मानववादी दृष्टिकोण तथा ऐतिहासिक पद्धति के कारण अपना रास्ता अलग बना लिया है। युग की परिस्थियितों में रखकर साहित्य और साहित्यकार के स्वरूप का स्पष्टीकरण तथा मूल्यांकन, ऐतिहासिक समीक्षा है। द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य की भूमिका में इस पद्धति की प्रतिष्ठा करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि किसी ग्रंथकार का स्थान निर्धारित करने के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक एवं जातीय साहित्य को देखना आवश्यक है जिससे आलोचक की अपनी जातीय परम्परा या सांस्कृतिक विरासत का बोध होना चाहिए। द्विवेदी जी की जीवन दृष्टि मानववादी है। मानवतावादी दृष्टिकोण तथा ऐतिहासिक पद्धति के कारण वे शुक्ल संस्थान के आलोचक होते हुए भी भिन्न हैं। हिन्दी साहित्य में तथा सूर, तुलसीदास आदि का मूल्यांकन उन्होंने मानवतावादी दृष्टि से किया है। कबीर को उन्होंने सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और साहित्य नैरन्तर्य के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा। कबीर के भाषागत वैशिष्ट्य पर भी पहले–पहल उनकी दृष्टि गई। द्विवेदी जी साहित्य को ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से परखते हैं।

छायावादोत्तर युग में साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति आलोचना भी मनोविश्लेष शास्त्र और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित हुई जिससे मनोविश्लेषणवादी और मार्क्सवादी समीक्षा पद्धतियों का जन्म हुआ।

मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा पद्धति में अज्ञेय और देवराज उपाध्याय के नाम उल्लेखनीय हैं।

मार्क्सवादी आलोचना :

मार्क्सवादी जीवन और साहित्य को द्वन्द्वात्मक तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद एवं समाजवादी यथार्थवाद के सिद्धांत के आधार पर परखता है। मार्क्स के अनुसार कला और साहित्य का उद्भव व्यष्टि चेतना से नहीं, समष्टि चेतना से होता है। उसकी दृष्टि में साहित्य और कला का स्वरूप वर्ग चेतना नियन्त्रित करती है। कलाकार का व्यक्तित्व उसकी परिस्थितियों तथा वर्ग चेतना के द्वारा ही नियनत्रित करती है। कलाकार का व्यक्तित्व उसकी परिस्थितियों तथा वर्ग चेतना के द्वारा ही नियिन्त्रत एवं रूपायित होता है। साहित्यकार अपने युग का उपभोक्ता

मात्र नहीं, उसका निर्माता भी है।

हिन्दी के मार्क्सवादी समीक्षकों में शिवदान सिंह चौहान, डॉ. राम विलास शर्मा, प्रकाश चन्द्र गुप्त, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. शिवकुमार मिश्र, अमृतराय आदि हैं।

नयी समीक्षा :

डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने आधुनिकता के सन्दर्भ में लोचना ग्रंथों की रचना की। उन्होंने साहित्य को वाद विशेष के माध्यम से आंकलित करना उचित नहीं समझा। इधर डॉ. रघुवंश, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, नेमिचन्द्र जैन, डॉ. बच्चन सिंह, लक्ष्मी कांत वर्मा की आलोचनाओं में नयी समीक्षा के संकेत चिन्ह उपलब्ध होते हैं। नयी समीक्षा अमरीका की नयी आलोचना के नैन सम, राबर्ट पेन, वारेन, कली बुक्स, डेट आदि से प्रभावित है। यह किसी पूर्व निश्चित मान को स्वीकार नहीं करती। उनकी दृष्टि से रसवादी मार्क्सवादी, ऐतिहासिक, मनोविश्लेषणात्मक मान अपूर्ण है। नयी सीमक्षा संरचना को महत्त्व देती है किन्तु साथ ही मूल्यों का ध्यान भी रखती है।

शैली वैज्ञानिक समीक्षा :

मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि बाह्य आरोपणों से युक्त कृति के स्वायत्त अध्यनन पर बल देती हुई यह आलोचना भाषा को प्रमुख पहलू के रूप में स्वीकार करती है। इनकी दृष्टि में कृति भाषा के अन्दर ही जन्म लेती है। इसलिए ये भाषावादी दृष्टिकोण से साहित्य का अध्ययन करते हुए स्वयं को मूल्यों से सर्वथा असम्पृक्त रखते हैं।

शैली विज्ञान की सैद्धांतिक और व्यापारिक आलोचना की समीक्षा से रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, सुरेश कुमार, विद्यानिवास मिश्र और पांडेय शशि भूषण शीतांशु से की जा सकती है।

पाठानुसंधान और पाठालोचन :

पाठानुसंधान और पाठालोचन की दृष्टि से डॉ. माता प्रसाद गुप्त का योगदान अविस्मरणीय है। जायसी ग्रन्थावली, पृथ्वीराज रासो, मधुमालती आदि कृतियों का वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पादन कर उन्होंने बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

सैद्धांतिक समीक्षा :

डॉ. नगेन्द्र के अलावा जिन आलोचकों ने सैद्धांतिक दृष्टि से उल्लेखनीय कार्य किया उनमें गुलाबराय (काव्य रूप, सिद्धांत और अध्ययन), बलदेव उपाध्याय (भारतीय साहित्य शास्त्र), राम दहिन मिश्र (काव्य दर्पण, काव्य विमर्श), डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित (रस सिद्धांत और विश्लेषण) आदि उल्लेखीय हैं।

इनके अतिरिक्त साहित्य के बदलते हुए तेवर को व्याख्यायित करने के लिए अज्ञेय, धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर, मुक्तिबोध ने काफ़ी योग दिया।

2.4.2 सारांश :

आधुनिक गद्य–विधाओं में से एक प्रमुख विधा हिन्दी निबन्ध है। निबन्ध विधा का सुत्रपात भारतेन्दु युग में इस युगीन निबन्ध की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है – विषय और शैली का वैविध्य/भारतेन्दु जी ने अपने निबन्धों को धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि विषयों के व्यापक क्षेत्रों में से लिया है। इस युग के अन्य प्रमुख निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट और प्रताप नारायण मिश्र हैं मिश्र जी ने तो गौण विषयों को अपने निबन्धों का विषय बनाया। भट्ट ने बाल–विवाह, कृषकों की दुरावस्था, देश–सेवा का महत्त्व जैसे विषयों पर अपनी लेखनी चलाई। द्विवेदी युग यद्यपि अपेक्षाकृत प्रौढ़ गद्य का काल है। इस युग में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निबन्ध राजनीतिक चेतना से सम्बन्ध रखते हैं। शुक्ल जी ने विचारात्मक निबन्ध अधिक संख्या में लिये। शुक्लोत्तर युग में इस विषय में चतुर्मखी विकास की दिशाएँ खुली हैं।

भारतेन्दु जी के ही हिन्दी नाटक का जनक माना जाता है। इस युग के नाटकों को पौराणिक, ऐतिहासिक,

राजनीतिक, सामाजक, प्रेमनाटक, प्रहसन और अनुवाद नाटकों में विभाजित किया जाता हैं नाटकों की संख्या की दृष्टि से तो यह युग पर्याप्त समृद्ध है, किन्तु गुणवत्ता की दृष्टि से नहीं। प्रसाद युग हिन्दी नाटक का स्वर्ण युग है। उनका झुकाव ऐतिहासिक नाटकों की ओर अधिक रहा। अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी ऐसे ही प्रमुख ऐतिहासिक नाटक हैं, प्रसादोत्तर युग में नाटक को रंगमंच के अभाव की समस्या का सामना करना पड़ा।

स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् नाटक में परिवर्तन का आभास हुआ। उपेन्द्रनाथ अश्क, रामकुमार वर्मा, जगदीशचन्द्र माथुर के नाम इसमें विशेष उल्लेखनीय हैं। मोहन राकेश को 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक इस दिशा में सराहनीय प्रयास है। एकांकी की शुरूआत भारतेन्दु काल से मानी जाती है। तब से अब तक एकांकी ने लंबी दूरी तय ही है। अब यह विकास के एक महत्त्वपूर्ण बिन्दू पर खड़ा है और इसकी संभावनाएँ अभी बनी हुई है।

रेडियो नाटकों और रंगमंचीय नाटकों में कुछ मूलभूत अंतर होता है। रेडियों नाटकों में जहाँ श्रेव्य की प्रधानता होती है वहाँ रंगमंचीय नाटकों में दृश्य की भाषा रेडियों नाटक का प्राण होती है।

काव्य और शिल्प की दृष्टि से काव्य नाटक आधुनिक हिन्दी साहित्य की एक नवीन विधा है, जो कि पश्चिम की देन है। इसे पद्य नाटक, गीति नाट्य, ध्वनि नाट्य, नाट्य काव्य नाटक की संज्ञा से भी अभिहित किया जाता है। इस परम्परा का आरम्भ जयशंकर प्रसाद युग से माना जाता है।

रिपोर्ताज फ्रांसीसी भाषा का शब्द है। सन् 1914 में रांगेय राघव ने बंगाल के भीषण अकाल से पीड़ित होकर 'तूफ़ानों के बीच' नामक रिपोर्ताज लिखा है। इन लेखकों को इतनी प्रसिद्धी न मिलने का कारण यही है कि कोई भी लेखक नियमित रूप से इस विधा का प्रयोग नहीं कर पाया है।

हिन्दी पत्रकारता में सन् 1826 में हिन्दी में प्रथम पत्र का जन्म कलकत्ता में हुआ। क्रांग्रेस की स्थापना और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने हिन्दी पत्रकारिता को विकसित करने में पर्याप्त सहयोग दिया है। हिन्दी पत्रकारिता का भविष्य अत्यन्त उज्जवल नज़र आता है।

हिन्दी आलोचना का आधुनिक रूप वर्तमान काल में विकसित हुआ, किन्तु इसमें भी पूर्व हिन्दी साहित्य में आलोचना की एक परम्परा प्रचलित थी, जिसका सीधा–संबंध संस्कृत काव्य–आलोचना से है। हिन्दी आलोचना और अनुसंधान के क्षेत्र में काशी नागरी प्रचारिणी–सभा और हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के संगठनकर्त्ता के रूप में बाबू श्यामसुन्दर दास ने हिन्दी के आलोचनात्मक साहित्य की अभिवृद्धि और उसके प्रचार कार्य मे महत्त्वपूर्ण योग दिया है। आज के युग में सब से बड़ी मांग यह है कि जीवन के अन्य क्षेत्रों के सदृश साहित्य के आलोचना के क्षेत्र में समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया जाए।

2.4.3 लघु प्रश्न :

1. हिन्दी निबन्ध का उद्‌भव और विकास विषय पर टिप्पणी करें।
2. भारतेन्दु युगीन हिन्दी निबन्ध का संक्षिप्त परिचय दें।
3. किस युग के नाटक को हिन्दी नाटक का स्वर्ण युग कहा गया?
4. स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् नाटक विधा में क्या तबदीली आई? प्रकाश डालें।
5. हिन्दी एकांकी का आंरभ और विकास विषय पर संक्षिप्त सार लिखें।
6. रेडियों एकांकी से क्या अभिप्राय है? प्रथम प्रसारण कब हुआ?
7. हिन्दी पत्रकारिता से आप क्या समझते हैं? अपना मत व्यक्त करें।
8. हिन्दी सर्वप्रथम उपन्यास किसे माना जाता है?
9. उपन्यास विधा के उद्‌भव और विकास पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
10. प्रेमचन्द युग के उपन्यासों के विषय पर टिप्पणी करें।

11. हिन्दी कहानी के विकास पर प्रकाश डालें।
12. प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियों का संक्षिप्त ब्यौरा दें।
13. प्रेमचन्दोत्तर कहानी पर प्रकाश डालें।
13. साठोत्तरी कहानी का संक्षेप में वर्णन करें।
14. नई कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालें।
15. हिन्दी कहानी में महिला कहानीकारों के योगदान पर प्रकाश डालें।
16. हिन्दी आलोचना के उद्‌भव और विकास विषय पर संक्षिप्त सार लिखें।

2.4.4 शब्दार्थ :

विक्षुब्ध	–	दुःखी
आकांक्षा	–	इच्छा
व्यापक	–	अधिक, बहुत
सर्वाधिक	–	सबसे अधिक
उपेक्षा	–	अनदेखा करना, अहमियत न देना
पैनी	–	तेज़
दीर्घ	–	लंबी
विस्तृत	–	विशाल
आकांक्षा	–	इच्छा
विद्वेष	–	भेदभाव
विघटन	–	टूटना, बिखराव
संकीर्ण	–	छोटी, तंग
ग्राम्य	–	ग्रामीण
प्रश्रय	–	आसरा

2.4.5 सहायक पुस्तकों की सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र।
2. हिन्दी एकांकी : उद्‌भव और विकास– डॉ. राम शरण महेन्द्र।
3. समकालीन हिन्दी नाटककार– डॉ. गिरीश रस्तोगी।
4. रंगमंच की भूमिका और नाटकः डॉ. रघुवीर दयाल वार्ष्णेय।
5. हिन्दी एकांकी की शिल्प विधि का विकास : डॉ. सिद्ध तथा कुमार।
6. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, चतुर्दश भागः सम्पादक डॉ. हरबंस लाल शर्मा।
7. निबन्ध : सिद्धांत और प्रयोग– डॉ. हरिहर नाथ द्विवेदी।
8. हिन्दी साहित्य : तृतीय खण्ड सम्पादक डॉ. धीरेन्द्र वर्मा तथा अन्य।
9. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ. शिव कुमार शर्मा
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास– कु. कुसुम वर्मा, डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
11. साहित्यिक निबंध– डॉ. शान्ति स्वरूप गुप्त